श्री कृष्ण मिश्र प्रणीत 'प्रबोधचन्द्रोदयम्' एक समीक्षात्मक अध्ययन

(SHRI KRISHNA MISRA PRANEET 'PRABODH CHANDRODHYAM' — EK SAMEEKSHATMAK ADHYYANA)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत

सार

निर्देशक

डॉ० रामकिशोर शास्त्री

रीडर, संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तुतकर्त्री

विनीता रानी

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

2002

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
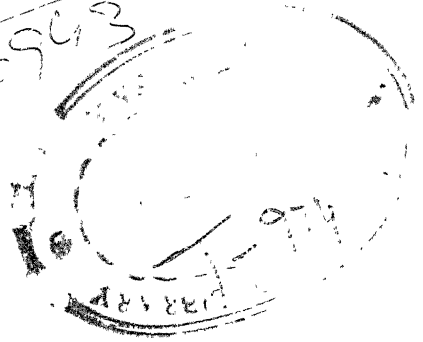
शोध प्रबन्ध सार

मनुष्य को अपनी अन्त:जिज्ञासाओं को शान्त करने के लिए समाधान रूप में दर्शन का ही आश्रय लेना पड़ता है। चूँकि दर्शन के सिद्धान्त अन्य शास्त्रों के सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक जटिल और गूढ प्रतीत होते हैं, इसी जटिलता के कारण ही सामान्य व्यक्ति जिज्ञासु होते हुए भी इसकी ओर शीघ्र प्रवृत्ति नहीं दिखाता।

अतः जनसामान्य की अभिरुचि दर्शन के प्रति अधिकाधिक बढ़े और वह अपना समाधान सरलता एवं सहजता से कर सके, इसी को ध्यान में रखकर 11वीं शताब्दी में श्री कृष्ण मिश्र ने अद्वैत दार्शनिक सिद्धान्त को आधार बनाकर प्रबोधचन्द्रोदय रूपी प्रतीक नाटक की रचना की। इस नाटक में मनुष्य के हृदयस्थ भावों को मानवीय पात्रों के रूप में चित्रित किया गया है। जिससे सुधी पाठक पुरुष, विवेक, मति, महामोह, मिथ्यादृष्टि जैसे पात्रों के आपसी वार्तालाप के माध्यम से स्वयं ही अद्वैत सिद्धान्त को समझने का प्रयास करते हैं। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के अध्ययन के दौरान इस नाटक की प्रतीकात्मकता, कथावस्तु, पात्रों, रस अलङ्कार तथा सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष इसकी दार्शनिकता की समीक्षा की गयी है। इस शोध प्रबन्ध - 'श्री कृष्ण मिश्र प्रणीत प्रबोधचन्द्रोदय एक समीक्षात्मक अध्ययन' को सात अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय में दर्शन की व्युत्पत्ति तथा मानव जीवन में उसके महत्त्व का विशद वर्णन किया गया है। 'दृश्यतेऽनेन इति दर्शनम्' अर्थात् जिसके द्वारा हमें तत्त्वबोध का ज्ञान हो, इस व्युत्पत्ति को आधार मानकर ही दर्शन को इस अध्याय में व्याख्यायित किया गया है। तत्त्वबोध का साधन भारतीय दर्शन के अनुसार वेदान्त

आदि शाखाओं को माना गया है। इसी क्रम में भारतीय दर्शन के दो भाग आस्तिक व नास्तिक तथा षड्आस्तिक दर्शनों का भी वर्णन है। षड्दर्शन अर्थात् न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा एवं वेदान्त का मूल स्रोत वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों, अरण्यकों एवं उपनिषदों में समाहित है। अपनी अलौकिक विशिष्टता के कारण भारतीय दर्शन के सिद्धान्त कई पाश्चात्य दार्शनिकों के चिन्तन का भी आधार बने हैं। अत: इसके महत्त्व के बारे में कोई संदेह नहीं है। भारतीय दर्शन मानव को जीने की कला सिखाता है। उसको भौतिकता से ऊपर उठाकर परमतत्त्व की प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है। जो जीवन का अंतिम सत्य है। भारतीय दर्शन में अद्वैत सिद्धान्त अत्यन्त मान्य रहा है। इस अद्वैत सिद्धान्त को जानने की जिज्ञासा दार्शनिकों को तो रहती ही है, लेकिन इसका लाभ सामान्य जनों को भी हो, इस हेतु से ग्यारहवीं शताब्दी में श्री कृष्ण मिश्र ने अपनी विशेष कवित्व शक्ति का चमत्कार दिखाते हुए प्रबोधचन्द्रोदय रूपी दार्शनिक प्रतीक नाटक का प्रणयन किया। किसी भी विषय को अध्ययन, श्रवण, मनन निदिध्यासन की अपेक्षा प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा अधिक सरलता से समझा जा सकता है। इसी वजह से जटिल समझे जाने वाले दार्शनिक विचारों को सामान्य जन तक पहुँचाने का सरल माध्यम नाटक विधा मानी गयी है। अत: भारतीय दर्शन के महत्त्व को जानते हुए आज के पाश्चात्य प्रभावित भारतीय समाज में ऐसे नाटक की समीक्षा समीचीन प्रतीत होती है।

द्वितीय अध्याय में यह बताया गया है कि प्रतीक शब्द का संस्कृत साहित्य में प्रयोग कहाँ-कहाँ तथा किन अर्थों में हुआ है। और इसकी व्युत्पत्ति का भी उल्लेख है। तदनन्तर इन नाटकों को 'प्रतीक नाटक' पद से ही क्यों अभिहित किया गया ? तथा सामान्य नाटकों से इन नाटकों की विशिष्टता बतायी गयी है। संस्कृत साहित्य में प्राचीन काल से ही प्रतीक शब्द का प्रयोग हुआ है । प्राचीन ग्रन्थ वेद में प्रयुक्त

'प्रतीक' शब्द के अर्थ पर चिन्तन किया गया है। ऋग्वेद में कई स्थानों पर इसका प्रयोग मिलता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में शांख्यायन ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय व गोपथ ब्राह्मण में प्रतीक शब्द का प्रयोग, संकेत, द्योतक मुख, प्रतिरूप व अङ्गों के रूप में हुआ है। इसी तरह उपनिषद् ग्रन्थों में वृहदारण्यक उपनिषद् तथा छान्दोग्य उपनिषद् में भी मुख, संकेत, तथा प्रतीकोपासना के रूप में प्रतीक शब्द का प्रयोग किया गया है। पुराणों में भागवत् पुराण, वायुपुराण, एवं महाभारत तथा काव्यों में शिशुपालवध में प्रतीक शब्द का प्रयोग अङ्ग, अवयव, रूप इत्यादि अर्थों में हुआ है। कोशों में अमरकोश, शब्द रत्न समन्वयकोश, मेदिनी कोश, तथा वाचस्पत्यम् आदि में प्रतीक शब्द के विभिन्न अर्थों में संग्रह निहित है। **अलीकादयश्च सूत्र के द्वारा** प्रति + इण् + कीकच् से प्रतीक शब्द की व्युत्पत्ति होती है। इसके अनुसार – 'प्रतीयते ज्ञायते वा इति प्रतीकम्' अर्थात् जिससे जाना जाय या जो जनावे उसे प्रतीक कहते हैं। अतः प्रतीक शब्द अङ्ग, अवयव, शरीर, मूर्ति-वाची सिद्ध होता है। प्रतीक नाटक के नामकरण की सार्थकता बताते हुए प्रतीक नाटक पद की साहित्यशास्त्र में व्याख्या की गयी है। प्रस्तुत नाटक में अमूर्त्त भावों का मानवीकरण किया गया है। अमूर्त्त पात्रों को काम, क्रोध आदि भावनाओं का प्रतीक माना गया है तथा भौतिक जगत् में मूर्त्त रूप में इनकी सत्ता नगण्य है। प्रतीक रूप में भावनाओं के प्रकटीकरण के कारण ही यह नाटक प्रतीक नाटक कहा गया है। प्रतीक नाटकों के पात्र अमूर्त्त व ऐतिहासिक होते हैं। उनमें पौराणिक तथा मानवीय भावनाएं होती हैं। जो रसाभिव्यंजना के लिए मानवपात्रों की भूमिका में प्रस्तुत की जाती है। पौर्वत्य तथ पाश्चात्य दार्शनिकों ने प्रस्तुत नाटक के लिए एलीगोरिकल शब्द का प्रयोग किया है लेकिन संस्कृत के अप्रस्तुत प्रशंसा आदि अलङ्कारों एवं हिन्दी के अन्योक्ति अलङ्कार में इसकी झलक दिखायी पड़ने से इस नाटक को एलीगोरी कहना उचित प्रतीत नहीं होता । कुछ लोगों

के अनुसार मोरालिटी से भी इसका साम्य बताया है किन्तु यह भी प्रतीक नाटक नहीं कहा जा सकता। बहुचर्चित शब्द रूपक का वर्णन यहाँ किया गया है । नाट्य व अलङ्कार रूप में वर्णित रूपक में उपमान एवं उपमेय दोनों की समान सत्ता होती है जबकि प्रतीक नाटकों में अमूर्त्त तत्त्वों को ही मूर्त्त रूप में लाया गया है अतः यह रूपक भी नहीं हो सकता। कुछ विद्वानों ने प्रतीक नाटकों को आध्यात्मिक नाटक कहा है। किन्तु यह भी उचित प्रतीत नहीं होता। क्योंकि यह नाम पात्रों की अभिव्यक्ति के प्रकार पर आधारित नहीं। अपितु पात्रों का चयन ही इसका आधार है। अतः इसे 'प्रतीक नाटक' नाम देना ही उचित प्रतीत होता है।

सामान्य नाटकों की अपेक्षा प्रतीक नाटकों में कथन की शैली और वस्तुतथ्य की परिकल्पना में अन्तर है। प्रतीक नाटकों में आध्यात्मिक स्तर पर अमूर्त्त मनोभावों को ही रक्त मांस धारी भौतिक मनुष्य का स्वरूप प्रदान कर दिया गया है।

प्रतीक नाटक रस के दृष्टिकोण से सामान्य नाटकों की अपेक्षा अधिक गंभीरता के साथ अवतीर्ण हुए हैं। इस नाटक में शान्त रस का अखण्ड साम्राज्य प्रतिष्ठापित होता है तथा वैराग्य की गहरी अन्विति सबको शान्त रस की सिद्धि के लिए गतिशील बनाती है।

तृतीय अध्याय में प्रतीक नाटकों के उद्‌भव के बारे में विस्तार से बताया गया है। वस्तुतः प्रतीक नाटक तो बाद में रचे गये किन्तु प्रतीकात्मकता का दर्शन संस्कृत वाङ्मय में वैदिक साहित्य से लेकर आज तक के साहित्य में किसी न किसी अंश में हो जाता है। वैदिक साहित्य में प्रतीकात्मकता ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद में कई स्थानों पर मिलती है। ऋग्वेद में प्रकृति की अमूर्त्त शक्तियों को मूर्त्त रूप में वर्णन करने की

चेष्टा की गई है। कृष्ण यजुर्वेद में इन्द्रियों का सम्भाषण दिखाई पड़ता है। सामवेद में श्रद्धा को माता से अभिन्न रूप में व्यक्त किया गया है। 'पितायत्कश्यप स्याग्नि: श्रद्धामाता मन्द: कवि:' । छान्दोग्योपनिषद् में इन्द्रियों के विवाद का वर्णन किया गया है। ऐतरेय उपनिषद् में भूख एवं प्यास ईश्वर से स्वयं के लिए स्थान की व्यवस्था करने को कहती है। इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि वैदिक साहित्य में प्रारम्भ से ही अमूर्त्त तत्त्व मूर्त्त एवं चेतन रूप से व्यवहार करते हैं। लेकिन यह मूर्तिकरण मुख्यत: दिव्य तत्त्वों का है न कि भाव तत्त्वों का। रामायण में प्रतीकात्मकता उतनी स्पष्ट नहीं है किन्तु गम्भीरता से विचार करने पर प्रतीकात्मकता आभासित अवश्य होती है। भगवान राम विवेक के प्रतीक हैं, सीता विवेक की पत्नी बुद्धि एवं मन्दोदरी मोह की पत्नी मिथ्यादृष्टि की प्रतीक है। महाभारत में प्रतीकात्मकता में संवाद इत्यादि का अभाव है किन्तु इस काल तक वैयक्तिकरण प्रक्रिया में एक स्पष्ट विचार की उत्पत्ति होती है। महाभारत के आदि पर्व में अमूर्त्त भाव तत्त्व मूर्त्त मानव सम्बन्ध में कल्पित हुए हैं। धर्म की दस पत्नियाँ हैं, उसके साथ तीन पुत्र एवं तीन पुत्रवधुओं का वर्णन महाभारत में किया गया है।

प्रथम नाटककार भास रचित बालचरितम् के द्वितीय अङ्क में प्रतीकात्मकता की स्पष्ट झलक मिलती है। जब राज्यश्री तथा शाप स्वयं पात्र रूप में आते हैं। राज्यश्री और शाप आदि अमूर्त्त तत्त्वों का पात्र रूप में उपस्थित होना प्रतीक शैली का सफल नाटकीय प्रयोग है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में महाकवि कालीदास ने भावतात्विक प्रतीक पात्रों का प्रयोग नहीं किया है। इसके चौथे अङ्क में शकुन्तला की विदाई के समय

प्रतीकात्मकता की झलक अवश्य मिलती है किन्तु कोकिल का बोलना एक संयोग है, आकाशवाणी दिव्य व्यापार है तथा लताओं का पीले पत्ते के रूप में अश्रु बहना भी वनस्पति सुलभ व्यवहार ही है। अत: यहाँ प्रतीकात्मकता का अभाव है।

अश्वघोष कृत प्रथम प्रतीक नाटक में तुरफान नामक स्थान से 1911 में प्राचीनकला के ताम्रपत्र पर अंकित तीन बौद्ध नाटकों की खंडित पांडुलिपियाँ एच. लूडर्स की खोज मानी जाती है। इनमें द्वितीय नाटक के पात्र प्रतीकात्मक हैं। यह नाट्यांश बहुत ही संक्षिप्त और केवल एक पृष्ठ का है। यह पृष्ठ भी बहुत ही गलित एवं जीर्ण अवस्था में प्राप्त हुआ है किन्तु जोड़-जोड़ कर पढ़ने पर धृति, बुद्धि, कीर्त्ति के यत्किंचित कथन प्रतीत होते हैं। इन तीनों पात्रों के संलाप से नाटक सम्बन्धी अन्य किसी भी उपादान के बारे में कोई जानकारी नहीं प्राप्त होती किन्तु यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि यह प्रतीक नाटक रहा होगा। कीर्ति, धृति, आदि पात्र दिव्य शक्ति से प्रभावित नहीं हैं। अत: कवि की कल्पना से ही इनमें मूर्त्तत्त्व, चेतनत्त्व एवं मनुष्यत्त्व की स्थापना हुई है। अत: यह नाटक खण्ड प्रथम प्रतीक नाटक के रूप में प्रतिष्ठापित होता है।

चतुर्थ अध्याय में प्रतीक नाटकों के विकास क्रम की विस्तृत चर्चा की गयी है। प्रतीक नाटकों में अमूर्त्त भावों को मूर्त्त रूप में वर्णित किया गया है। प्रतीक नाटकों में न केवल श्रद्धा, क्षमा, विवेक इत्यादि अमूर्त्त भावनाओं को मानव रूप में वर्णित किया गया है। बल्कि न्याय, आन्वीक्षिकी आदि शास्त्र, यक्ष्मा, विषूची आदि रोग, संजीवनी आदि औषधियों को भी मानव रूप में वर्णित किया गया है। संस्कृत में लिखे गये प्रतीक नाटकों में पहली शताब्दी में अश्वघोष कृत प्रथम प्रतीक नाटक खण्डित अवस्था में केवल एक पृष्ठ का प्राप्त होता है। इसके उपरान्त कई शताब्दियों तक

प्रतीक नाटकों का प्रणयन ही नहीं हुआ। 11वीं शताब्दी के मध्य में श्री कृष्ण मिश्र द्वारा प्रणीत प्रबोधचन्द्रोदय नाटक मिलता है। लम्बे अन्तराल तक प्रतीक नाटकों की रचना क्यों नहीं हुई? इसका भी उल्लेख इस अध्याय में किया गया है। श्री कृष्ण मिश्र द्वारा दर्शन प्रधान इस प्रतीक नाटक की रचना के उपरान्त उनसे प्रेरित होकर कई कवियों ने अपने दार्शनिक मतों पर आधारित प्रतीक शैली में ही कई नाटकों की रचना की। जिनमें मोहराजपराजय, संकल्पसूर्योदय, यतिराजविजय, चैतन्यचन्द्रोदय, अमृतोदय, धर्मविजय नाटक, जीवानन्दम, विद्यापरिणयनम्, जीवन्मुक्ति कल्याणम्, पुरंजनचरितम् एवं जीवसंजीवनीनाटकम् आदि प्रतीक नाटक प्रमुख है। इन सभी नाटकों की कथावस्तु तथा पात्रों के बारे में विस्तार से उल्लेख किया गया है।

पंचम अध्याय में प्रबोधचन्द्रोदय नाटक की विशिष्टता के बारे में बताया गया है। इसे ही प्रतीक नाटकों की टूटी हुई कड़ी को जोड़ने का श्रेय जाता है। विशिष्ट के साथ-साथ यह पूर्ण रूप से उपलब्ध प्रथम प्रतीक नाटक है और नाट्यशास्त्रीय परिभाषा के अनुरूप है। नाटक की कथावस्तु के प्रतिपाद्य विषय आध्यात्मिक एवं मानसिक हैं। मानव मन में होने वाले अंतर्द्वन्द्व प्रतीक पात्रों के माध्यम से चित्रित किए गये हैं। नाटककार का उद्देश्य धर्म दर्शन एवं आत्मा के मोक्ष इत्यादि तात्त्विक पदार्थों का चित्र प्रस्तुत करना तथा उसका समाधान करना ही है। इस नाटक में अप्रस्तुत की झलक दिखाई पड़ती है। इस नाटक में कथावस्तु के दो प्रकार **आधिकारिक** एवं **प्रासंगिक** भी हैं। मुख्य कथा के रूप में राजा विवेक की कथा चलती है तथा प्रासंगिक के दो भेदों में प्रथम **पताका** के रूप में विष्णुभक्ति की कथा है तथा प्रासंगिक कथा के दूसरे भेद **प्रकरी** के रूप में सरस्वती की कथा चलती है। कथा की इस विशिष्टता के अलावा प्रबोधचन्द्रोदय नाटक में **अवस्थाओं, अर्थप्रकृतियों** और **संधियों** का भी यथोचित प्रयोग हुआ है। अवस्थाओं के रूप में **आरम्भ, यत्न,**

प्राप्त्याशा, नियताप्ति, तथा **फलागम** इन पांचों का इस नाटक में सुन्दर ढंग से विन्यास किया गया है तथा **बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी** और **कार्य** ये पांच अर्थ प्रकृतियाँ भी इस नाटक में पूर्ण रूप से उपस्थित है। पंच अवस्थाओं तथा पंच अर्थप्रकृतियों के मिलन से **पंचसन्धि** का निर्माण होता है। **मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श** एवं **निर्वहन** इन पंचसन्धियों का रुचिर सन्निवेश इस नाटक में हुआ है। इस नाटक में पूर्ण मनोवैज्ञानिक ढंग से पात्रों का चरित्र-चित्रण किया गया है। प्रबोधचन्द्रोदय नाटक की भाषा भावगम्य, चित्ताकर्षक, सरल एवं सरस है। इसकी भाषा प्रसादगुण से युक्त है, साथ ही उसमें माधुर्य और ओज का भी पुट है तथा वैदर्भी रीति का विशेष प्रयोग है। गौड़ी रीति का भी प्रयोग कहीं कहीं हुआ है। अलङ्कारों में रूपक, उपमा, अपह्नुति, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, विशेषोक्ति, समासोक्ति और दीपकालङ्कार का प्रयोग अच्छी प्रकार से किया गया है। विशिष्ट छन्दों का भी इस नाटक में प्रयोग हुआ है। जिनमें शार्दूलविक्रीडित का प्रयोग प्रचुर रूप में हुआ है। इसके अलावा वसंततिलका, मंदाक्रान्ता, शिखरिणी, मालिनी, इन्द्रवज्रा आदि का सुरुचिपूर्ण विधान नाटक में देखने को मिलता है। प्रबोधचन्द्रोदय नाटक आध्यात्मिक विषय का होने के कारण शान्तरस प्रधान है, लेकिन इसके अलावा अन्य आठों रस भी गौण रूप में प्रयुक्त हुए हैं। अतः प्रबोधचन्द्रोदय नाटक अपनी विशिष्ट कथावस्तु, अमूर्त्त पात्रों के मूर्त्तीकरण के कारण, विशेष भाषाशैली तथा शान्त रस प्रधान होने के कारण संस्कृत साहित्याकाश में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।

छठवें अध्याय में प्रबोधचन्द्रोदय की दार्शनिकता तथा अन्य दार्शनिक मतों से भेद का उल्लेख करते हुए इसके महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। प्रबोधचन्द्रोदय की सामान्य नाटकों से तुलना करते हुए इसके सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व को भी बताया गया है। प्रबोधचन्द्रोदय में अद्वैत वेदान्त के स्वरूप

का निर्धारण किया गया है। नाटककार ने अद्वैत मत के अनुसार **तत्त्व विचार** की व्याख्या प्रस्तुत करने के साथ ही **साधना मार्ग** की विवेचना भी भक्ति के द्वारा वर्णित की है। उनके अनुसार तत्त्वज्ञान के लिए भक्ति मार्ग का ही आश्रय लेना चाहिए। विष्णुभक्ति का अवलम्बन लेने के साथ ही उन्होंने अंशाशिभाव का भी निराकरण किया है। प्रबोधचन्द्रोदय रूप प्रतीक नाटक साधारण नाटकों की अपेक्षा इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसके पात्र मानसिक भावनाओं के प्रतीक बनकर अवतरित होते हैं जबकि साधारण नाटक लौकिक चरित्रों द्वारा मानसिक भावों को जागृत करता है। अपनी अद्‌भुत कल्पना शक्ति व जागरुक मनोवैज्ञानिक प्रतिभ के फलस्वरूप श्री कृष्ण मिश्र ने अपने अमूर्त्त पात्र विषयक वर्णनों में भी सजीवता ला दी है। इनके चरित्र इतने जीवन्त और सक्रिय चित्रित किए गये हैं कि उन्हें दार्शनिक मतवादों की कठपुतली समझने का भ्रम नहीं होता । इस नाटक में लोगों की जीवन की समरसता की जगह उनके चिंतन पक्ष को अधिक प्रभावित किया गया है। प्रबोधचन्द्रोदय में तत्कालीन जनमानस की राजनीतिक चेतना स्पष्टता के साथ देखी जा सकती है। प्रबोधचन्द्रोदय इस नाटक में तत्कालीन सांस्कृतिक चेतना सर्वाधिक रूप में वर्णित है। दार्शनिक चिंतन भी तत्कालीन संस्कृति का अंग है। तत्कालीन जनमानस की धार्मिक प्रवृत्तियां भी इस नाटक में परिलक्षित होती हैं।

सप्तम् अध्याय उपसंहार में प्रतीक नाटकों की सुदीर्घ परम्परा विवेचित की गई है। जिससे यह ज्ञात होता हैं कि संस्कृत वाङ्मय में यह प्रतीक नाटक अपना विशिष्ट स्थान रखता है। महाकवि अश्वघोष को यह श्रेय जाता है कि उन्होंने प्रतीक शैली की नाट्यकृति का सर्वप्रथम प्रणयन किया। उनकी नाट्यरचना छिन्न-भिन्न अवस्था में प्राप्त हुई। प्रतीक नाटकों के प्रणयन की रुकी हुई प्रक्रिया को पुनः प्रारम्भ कराने का श्रेय 11वीं शताब्दी में श्री कृष्ण मिश्र ने प्रबोधचन्द्रोदय की रचना करके किया। इस

नाटक में अमूर्त भावों का विशुद्ध मानवीकरण किया गया है। एक सहस्त्र वर्षों तक प्रतीक नाटकों का प्रणयन अवरूद्ध क्यों हो गया? इस सम्बन्ध में यह बताया गया है कि चूँकि अश्वघोष बौद्ध दार्शनिक थे और यह वह काल था जब बौद्धों का विरोध चरम पर था। इस वजह से उनकी शैली आस्तिक विचारधारा वाले विद्वानों के कोप का भाजन बन गयी। कालान्तर में दर्शन से जनसामान्य को होने वाले लाभ को दृष्टिगत रखकर इस प्रतीक शैली के दार्शनिक नाटक की रचना की । श्री कृष्ण मिश्र ने अद्वैत की स्थापना में कोई कसर नहीं रखी है। इस प्रतीक नाटक के सभी अङ्कों में अद्वैत की छाया दिखती है किन्तु षष्ठ अङ्क में 'प्रबोधोदय' के प्रसंग में अद्वैत का सिद्धान्त स्पष्ट ढंग से व्याख्यायित है। इसमें नाट्यशास्त्र के नियमों का पालन किया गया है। अमूर्त्त भावों का पात्रों के रूप में चित्रण सजीवता उत्पन्न करता है। इसका मुख्य रस शान्तरस है लेकिन अन्य सहयोगी रसों की उपस्थिति से यह कहीं से भी साधारण नाटकों से पीछे नहीं है। प्रबोधचन्द्रोदय के अतिरिक्त अन्य नाटक भी अधिकांशत: दार्शनिक हैं। इनमें चरित्रों के माध्यम से किसी न किसी दार्शनिक समस्या को तथा दार्शनिक मतवाद को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

श्री कृष्ण मिश्र प्रणीत 'प्रबोधचन्द्रोदयम्' एक समीक्षात्मक अध्ययन

(SHRI KRISHNA MISRA PRANEET 'PRABODH CHANDRODHYAM' — EK SAMEEKSHATMAK ADHYYANA)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

निर्देशक

डॉ0 रामकिशोर शास्त्री

रीडर, संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तुतकर्त्री

विनीता रानी

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

2002

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन

ज्ञान की प्रत्येक शाखा का पर्यवसान दर्शन में होता है। दर्शन की जटिलता और गूढता किसी से छिपी नहीं है। जब दर्शन के जटिल सिद्धान्त प्रतीकों के माध्यम से साहित्य की किसी विधा के रूप में सर्वजन को सुलभ होने लगे तो कर्त्ता या द्रष्टा, किसी भी सहृदय को असीम आनन्द की अनुभूति होने लगती है। दार्शनिक सिद्धान्तों को प्रतीक का अवलम्बन देकर नाटक के रूप में सुधी जनों के समक्ष प्रस्तुत करने का अभूतपूर्व प्रयास ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में श्री कृष्ण मिश्र ने 'प्रबोधचन्द्रोदय' नामक प्रतीक नाटक का प्रणयन करके किया।

विद्यार्थी जीवन के प्रारम्भ से ही दर्शनशास्त्र के प्रति मेरा रुझान था, फलतः मैने स्नातकोत्तर (संस्कृत) में दर्शन वर्ग को इच्छित उपविषय के रूप में चुना। साहित्य में भी मेरी अभिरुचि न्यूनाधिक रूप में तो थी ही, एम.ए. करने के पश्चात् जब शोधकार्य करने के प्रति मेरी प्रवृत्ति हुई तो इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के पूज्य गुरुवर डा0 वीरेन्द्र कुमार सिंह ने मेरी उभयविध प्रवृत्ति को देखकर प्रबोधचन्द्रोदय पर शोध कार्य करने की प्रेरणा दी।

फलतः उन्हीं के निर्देशन में मैने 'श्री कृष्ण मिश्र प्रणीत 'प्रबोधचन्द्रोदयम्' एक समीक्षात्मक अध्ययन' पर शोध कार्य प्रारम्भ किया। 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' की उक्ति मेरे शोधकार्य में पूर्णतया चरितार्थ हुई। जब शोधकार्य के मध्य में ही नवम्बर 1999 में अनभ्र वज्रपात हुआ और डा0 वीरेन्द्र कुमार सिंह जी असमय में ही काल कवलित हो गये । कराल काल की इस कुटिल गति को देखकर मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गयी, जिसके परिणामस्वरूप मेरा शोधकार्य रुक गया।

शोधकार्य को पुनः प्रारम्भ करने का श्रेय पूज्य गुरुवर डा0 राम किशोर शास्त्री, रीडर संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय को जाता है। उन्होंने अपनी विशिष्ट शैली से इस नाटक की रहस्यात्मकता एवं जटिलता को इतना सरल बना दिया कि मुझे भी कठिन लगने वाले इस शोध कार्य की राह स्वतः दिखने लगी। मेरे प्रथम शोध निर्देशक स्वर्गीय डा0 वीरेन्द्र कुमार सिंह ने जहाँ इस प्रतीक नाटक के बारे में मुझे अवगत कराया वहीं इस प्रतीक के मर्म एवं महत्त्व का विशद् विश्लेषण मुझे मेरे वर्तमान शोध निर्देशक पूज्य डॉ0 राम किशोर शास्त्री के मुखारबिन्दुओं से ज्ञात हुआ । इस प्रतीक नाटक के समीक्षात्मक अध्ययन में गति और दृष्टि की प्राप्ति में श्रद्धेय गुरुवर्य डा0 शास्त्री जी की कृपा ही प्रधान रही। डा0 शास्त्री ने मेरा अधूरा शोध प्रबन्ध पूरा कराने में पूर्ण सहयोग एवं प्रोत्साहन प्रदान किया, जिससे मुझे आत्मबल मिलता रहा और आज मैं अपना यह शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत कर सकी हूँ ।

मेरे शोध प्रबन्ध के प्रणयन में मेरे पति डॉ0 संजय सिंह सहायक आचार्य, भेषज विज्ञान, मोती लाल नेहरू मेडिकल कालेज, इलाहाबाद ने अपूर्व सहयोग दिया। वे मुझे सदैव शोध सम्बन्धित अध्ययन के लिए प्रेरित करते रहे। बिना उनके सहयोग के यह कार्य असंभव था।

परिवार के अन्य सदस्यों का भी इस कार्य को पूर्णरूप से सफल बनाने में योगदान रहा, विशेषकर पितृकल्प पूज्य प्रो0 देवेन्द्र प्रताप सिंह जी एवं मातृकल्प पूज्य श्रीमती गिरिजा सिंह जी का, जिन्होंने मेरे पारिवारिक दायित्वों को वहन कर मुझे इस कार्य के लिए अधिकतम समय उपलब्ध कराया।

शोध प्रबन्ध के प्रणयन की प्रेरणा मेरे पूज्य पिता श्री सिद्धिनाथ सिंह जी तथा माता श्रीमती उषा सिंह जी से मिली। मेरे भ्राता विनय, भानु, विपुल, चन्द्र प्रकाश तथा मेरी अनुजा श्रीमती पुनीता सिंह का भी सहयोग बराबर मिलता रहा। मेरे प्रिय पुत्रों यजुष व ऋजु ने भी अपनी बाल सुलभ चंचलता से शोध प्रबन्ध को परिपूर्ण होने तक सरसता एवं जीवन्तता प्रदान की।

शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में इसके दार्शनिक पक्ष पर कई बिन्दुओं पर विश्लेषण के लिए दर्शन शास्त्र विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय के डॉ0 अनिल कुमार सिंह भदौरिया एवं श्री प्रभात चन्द्र मिश्र का भी सहयोग मुझे प्राप्त हुआ। इनके सहयोग के लिए मैं उनकी अत्यन्त आभारी हूँ।

संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय की अध्यक्ष डा0 (श्रीमती) मृदुला त्रिपाठी, प्रो0 सन्त नारायण श्रीवास्तव (सेवानिवृत्त), डॉ0 राज लक्ष्मी वर्मा, डॉ0 रंजना त्रिपाठी एवं डॉ0 प्रेम कुमारी सिंह आदि का आशीर्वाद सदैव साथ रहा।

मेरे सहपाठी मनीषा, रेनू, रंजना, विभा, अरविन्द कुमार शुक्ल एवं कमल देव शर्मा का भी सहयोग निरन्तर मिलता रहा। इनके अतिरिक्त इलाहाबाद विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तकालय से भी मुझे समय-समय पर अध्ययन सामग्री उपलब्ध हुयी। इस सहयोग के लिए मैं उप पुस्तकालयाध्यक्ष श्री एस. के. यादव जी का भी आभार ज्ञापित करती हूँ ।

इस शोध प्रबन्ध को ग्रन्थ का आकार देने में मेसर्स नितिन प्रिन्टर्स का महत्वपूर्ण सहयोग रहा। उन्होंने कम्प्यूटर से शीघ्र टाइप करके समय पर शोध ग्रन्थ को उपलब्ध करवाया। इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

अंत में ईश्वरीय अनुकम्पा, गुरुकृपा एवं स्वाध्याय से इस विषय को जितना समझ सकी उसे शोध प्रबन्ध के रूप में नीर-क्षीर विवेक हेतु सुधीजनों के समक्ष प्रस्तुत कर रही हूँ। मुझे विश्वास है कि मेरा यह प्रयास उनके स्वल्प सन्तोष का कारक बनेगा।

विनीता

विनीता रानी

– दीपावली –

विक्रम संवत् 2059

तद्नुसार 4 नवम्बर 2002

प्रस्तावना

मानव जब इस पृथ्वी पर आया तो उसके साथ यह प्रकृति थी और प्रकृति से जुड़े कई अनसुलझे प्रश्न थे। आंधी, तूफान, अतिवृष्टि, अनावृष्टि और दावाग्नि लोगों को आतंकित कर देती थी। मनुष्य की बौद्धिकता का विकास नहीं हो पाया था। तर्क बुद्धि की जगह विश्वास और प्रेम प्रभावी था। इसलिए लोग अपने बचाव के लिए प्रकृति की विकरालता से अपनी सुरक्षा का आश्वासन पाने के लिए शब्दों के माध्यम से देवोपासना में प्रवृत्त हुए । यही शब्द जब उनकी भावनाओं को व्यक्त करने में कम पड़ने लगे तब उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक रूप में चित्रों को माध्यम बनाया। क्योंकि लिपि का विकास तब तक नहीं हो पाया था। लिपि के अभाव में मानव सभ्यता के विकास में लेखन की शुरुआत अन्य कलाओं की अपेक्षा देर से हुई। जब मानव के पास लिपि नहीं थी तो चित्रों द्वारा भावों की अभिव्यक्ति करना अधिक सरल था। जिसका उदाहरण अजन्ता एवं एलोरा की गुफाओं तथा सिन्धु घाटी और मोहनजोदड़ों की खुदाई से प्राप्त मूर्तियों में मिलता है।

मनुष्य की आंतरिक भावनाओं का जितना सूक्ष्म चित्रण इन प्रतिमाओं में देखने को मिलता है उसे कई कविताओं के माध्यम से भी व्यक्त नहीं किया जा सकता।

कालान्तर में जब लिपि का विकास हुआ तब लोगों ने अपने मनोभावों को भाषा- बद्ध करना प्रारम्भ किया। प्रारम्भिक अवस्था में कला मनुष्य के मनोजगत् का स्थूल उद्घाटन ही करती थी। मूर्त औरअमूर्त का स्वरूप भी प्रारम्भ में स्थूलत्व

लिऐ हुए ही रहा। अर्थात् सामान्य मनुष्य के रूप में वह कुछ स्थूल वस्तुओं को प्रतीकीकरण के माध्यम से प्रकट कर अपने चिंतन को प्रत्यक्ष जगत तक ही विकसित कर सका। लेकिन अनवरत चिन्तनशील मनुष्य ने जब अपने आन्तरिक जगत् का अन्वेषण प्रारम्भ किया तब 'अमूर्त्त' चिन्तनयुक्त वह व्यक्ति 'विशेष व्यक्ति' के रूप में प्रतिष्ठित होकर, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, मूर्त्त और अमूर्त्त सभी पहलुओं पर अपनी दृष्टि दौड़ाने लगा। इसीलिए विशेष व्यक्ति का यह अमूर्त चिन्तन् 'शास्त्र विद्या' का रूप ग्रहण करता है। मनुष्य की सम्पूर्ण सांस्कृतिक चेतना और उसका कला ज्ञान इसी अमूर्त्त चिन्तन का परिणाम है।

उपर्युक्त शास्त्र विद्या में 'दर्शनशास्त्र' वह विद्या है जिसमें मनुष्य स्वयं का ही अध्ययन करता है । अपनी उत्पत्ति से सम्बन्धित जिज्ञासा तथा जिस जगत् में वह रह रहा है, इसके नियन्ता आदि से सम्बन्धित कई प्रश्न उसको मथित करते रहते हैं। जिनका उत्तर ढूँढने का प्रयास प्राचीन ऋषियों से लेकर आज तक के दार्शनिक कर रहे हैं । वैदिक संहिता, आस्तिक दर्शनों तथा नास्तिक दर्शनों में उन्हें लिपिबद्ध करने का महत् प्रयास भी ऋषियों व दार्शनिकों ने ही किया है। लेकिन सामान्य मनुष्य के लिए ये सारे शास्त्र बहुत साध्य नहीं हो सकते । अतः जब कोई अपनी शास्त्र विद्या का रसास्वादन सामान्य जनों को भी कराना चाहे तो उससे पुण्यकर्मा कोई और हो ही नहीं सकता।

ऐसा ही पुण्य कार्य श्री कृष्ण मिश्र जी ने अमूर्त्त भावों को विशुद्ध मानवीकरण के माध्यम से अपने प्रतीक नाटक 'प्रबोधचन्द्रोदय' की रचना करके किया। उन्होंने अपनी रचना को और रुचिकर बनाने के लिए सरस नाट्य विधा को ही चुना। क्योंकि दर्शक जब अपने ही समान नाटक के पात्रों को चलते फिरते तथा

वार्तालाप करते हुए देखते हैं तब कवि द्वारा पात्रों के माध्यम से सम्प्रेषित कोई भी संदेश अधिक सहजता से उनके मानस पटल को प्रभावित कर जाता है।

श्री कृष्ण मिश्र ने नाट्य विधा का चुनाव किया, यह तो सामान्य बात है, किन्तु उन्होंने विलुप्त प्राय 'प्रतीकशैली' में अपने नाटक की रचना की यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात है। पहली शताब्दी में लिखी गई अश्वघोष कृत प्रथम 'प्रतीक शैली' की दो नाट्यकृतियों के बाद एक सहस्त्र वर्ष पश्चात ग्यारहवीं शताब्दी में श्री कृष्ण मिश्र ने 'प्रबोधचन्द्रोदय' नामक नाटक की रचना की, चूँकि अश्वघोष की दोनों नाट्यकृतियाँ जर्जर अवस्था में प्राप्त हुई, अत: प्रतीक शैली परिपूर्ण स्वरूप में प्रबोध चन्द्रोदय में ही प्रकट हुई। अत: 'प्रबोधचन्द्रोदय प्रतीक नाटकों की परम्परा का आधार स्तम्भ है'' यह उक्ति समीचीन ही लगती है।

प्रतीकात्मकता का आधार लेकर श्री कृष्ण मिश्र रचित इस नाटक में मानव हृदय की शक्तियों के अंतर्विरोध का सफल उपस्थापन है। इस उपस्थापन में मानव हृदय की दो स्वाभाविक वृत्तियों के चित्र हैं, जिनमें एक पक्ष की वृत्तियाँ आत्म ज्ञान की ओर प्रवृत्ति रखती हैं, और दूसरे पक्ष की वृत्तियाँ उससे विमुख।

गम्भीर भावपूर्ण दार्शनिक विचारधारा को आधार बनाकर एक मनोरञ्जक नाटक प्रस्तुत करना कठिन है, किन्तु यह अत्यन्त सत्य है कि इस प्रकार की कठिनाइयों के रहते हुए भी श्री कृष्ण मिश्र की यह रचना अधिक सफल हुई है। श्री कृष्ण मिश्र ने मानव आत्मा के शाश्वत संघर्ष का जो कलात्मक नाटकीय चित्र उपस्थित किया है वह वास्तव में मनोहर है। सैद्धान्तिक दृष्टि से यह नाटक 'अद्वैत वेदान्त' एवं 'विष्णुभक्ति' का समन्वयात्मक रूप प्रकट करता है किन्तु कहीं भी दार्शनिक विषय तथा उपदेशों ने नीरसता का आभास नहीं होने दिया है। इस नाटक

की प्रतीकात्मकता बुद्धिगम्य एवं तर्क सङ्गत है। कथावस्तु आद्यान्त सर्वत्र नीरसता से रहित है। रोचकता इतनी है कि उत्सुकता वश इसे शुरु से अंत तक पढ़े बिना नहीं रहा जा सकता। इस नाटक की विशेषता यह है कि आकार तथा शैली में यह अन्य सामान्य नाटकों से सर्वांशत: मिलता जुलता है।

यद्यपि प्रबोधचन्द्रोदय के पश्चात् इस शैली के कई नाटको की रचना हुई, बावजूद इसके प्रवाहविरूद्ध इस शैली का अधिक विकास नहीं हो सका।

फल चाहे जो हो, श्री कृष्ण मिश्र का यह प्रयास निस्संदेह प्रशंसनीय है, न केवल अपनी नवीनता के लिए, अपितु सफल प्रतीकात्मकता के लिए भी श्री कृष्ण मिश्र की यह कोई सहज कवित्शक्ति नहीं है, प्रत्युत एक सतर्क बौद्धिक प्रवृत्ति है।

अत: आज के परिपेक्ष्य में जब पाश्चात्य देश हमारे शास्त्रों के प्रति अभिरूचि तथा दार्शनिक सिद्धान्तों के अन्वेषण को अपने चिन्तन का आधार बना रहे हैं । हम भारतीयों का भी यह दायित्व बन जाता है कि अपने संस्कृत साहित्य के ऐसे विस्मृत से हो गये अमूल्य रत्नों को खोजें तथा उन्हें अपने शोध का विषय बनायें।

मुझे विश्वास है कि मेरे इस छोटे से प्रयास से भावी अनुसंधित्सुओं को स्वल्प किन्तु सक्षम संबल मिलेगा ।

प्रथम अध्याय

दर्शन

ॐ

प्रथम - अध्याय

दर्शन

मानव जाति की उत्पत्ति के साथ ही उसकी आन्तरिक जिज्ञासाओं, स्वयं तथा संसार को नियन्त्रित करने वाली सर्वोपरि नियन्त्रण शक्ति के बारे में अन्वेषण करने की चेष्टाओं ने ठीक उसी समय 'दर्शन' को भी जन्म दिया।

यद्यपि पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार —

दर्शन अंग्रेजी शब्द 'फिलॉसफी' का अनुवाद है। यह दो ग्रीक पद 'फिलॉस' और 'सोफिया' से मिलकर बना है। जिसका क्रमशः तात्पर्य है 'प्रेम एवं अनुराग' । इस प्रकार सम्पूर्णता की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि दर्शन विद्या के प्रति प्रेम या अनुराग है। तथापि भारतीय मनीषियों द्वारा 'दर्शन' को अधिक स्पष्ट रूप से व्याख्यायित किया गया है।

भारतीय ऋषियों ने दर्शन शब्द को 'दृश्' धातु से निष्पन्न बताया है। इसकी उत्पत्ति दो प्रकार से हुई है। जैसे 'दृश्यतेऽनेन इति दर्शनम्, (दृश् + ल्युट्) अर्थात् जिसके द्वारा हमें तत्त्वबोध का ज्ञान होना संभव हो तथा 'दृश्यते इति दर्शनम्' अर्थात जिसका तत्त्वबोध या आत्मसाक्षात्कार हो। भारतीय दृष्टिकोण से प्रथम व्युत्पत्ति ही सार्थक है। इसके अनुसार भारतीय दर्शन वेदान्तादि शाखाओं के माध्यम से

तत्त्वबोध का साधन है। भारतीय दर्शन को दो भागों में विभाजित किया गया है। आस्तिक और नास्तिक। आस्तिक दर्शन वह है जो वेद की प्रामाणिकता में विश्वास रखता है। छः आस्तिक दर्शनों में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा एवं उत्तर मीमांसा अथवा वेदान्त को बताया गया है। जिन्हें 'षड्दर्शन' भी कहा गया है। नास्तिक दर्शन वह है जो वेद की प्रामाणिकता में विश्वास नहीं करता। जैसे-जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन एवं चार्वाक दर्शन। भारतीय दर्शन की महत्ता के बारे में डा० राधाकृष्णन ने 'भारतीय दर्शन' नामक ग्रन्थ में यह कहा है कि केवल भारतीय दर्शनशास्त्र का अध्ययन ही अपने आपमें भारत के शानदार भूतकाल का सही-सही चित्र उपस्थित कर सकता है।

भारतीय दर्शन के मूल स्रोत हमें वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों, अरण्यकों एवम् उपनिषदों में स्पष्ट रूप से मिलते हैं। इसीलिए षड्दर्शन के भाष्यकारों (न्याय) वात्स्यायन, (वैशेषिक) प्रशस्तपाद, (सांख्य) विज्ञानभिक्षु, (पूर्वमीमांसा) शबर, (योग) व्यास एवं (वेदान्त) शंकराचार्य आदि ने सम्बन्धित सूत्र ग्रन्थों के भाष्य-प्रणयन में उपनिषद् सिद्धान्तों का यथोचित आश्रय लिया है और उपनिषद् वाक्यों को प्रमाण रूप में उद्धृत भी किया है। संहिता में मंत्र द्रष्टा ऋषियों (ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः) के नितान्त रहस्य से भरे अनुभव वर्तमान हैं। संहिताओं के अंतर्गत औपचारिक रूप से किसी पूर्व सिद्धान्त विशेष की खोज करना उचित नहीं है। इसका प्रमुख कारण यह है कि संहितावर्ती दार्शनिक चिंतन ऋषियों के स्वतंत्र चिंतन हैं। इसलिये उनमें वर्तमान काल जैसे पूर्ण औपचारिक सिद्धान्त नहीं दिखाई पड़ते। उनमें अद्वैतवाद जैसे दार्शनिक सिद्धान्तों के बीज दिखाई पड़ते हैं । इस संदर्भ में इम्पीरियल गजेटियर में

लिखा गया है कि संहिता काल में आत्मवाद का चिंतन प्रारम्भ हो गया था।1 प्रसिद्ध दार्शनिक कीथ ने कहा है कि भारतवर्ष की प्राचीनतम कविता के अंतर्गत भारतीय दर्शन के मौलिक स्वरूप पहले से ही वर्तमान हैं।2 अतः भारतीय दर्शन की मूल चिन्तन धारा वैदिक संहिताओं के मूल स्रोत से प्रस्फुटित हो, ब्राह्मणों एवं आरण्यकों के मार्ग से प्रवाहित होती हुई, उपनिषदों की गंगोत्री में नितान्त सशक्त रूप में प्रकट हुई है।

ड्यूसन3 एवं मैक्समूलर4 ने वैदिक संहिताओं में भारतीय दर्शन के बीज को माना है । मैक्समूलर ने वैदिक देववाद को हीनोथिज्म 5 कहा है। अर्थात् जब ऋग्वैदिक ऋषि किसी देवता का वर्णन सर्वोच्च देवता के रूप में करते हैं तो यह देववर्णन पद्धति हीनोथिज्म कहलाती है, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि एक देवता को सर्वोच्च मान लेने से अन्य देवताओं का महत्व न्यून हो जाता है । जैसा कि पाश्चात्य दार्शनिक केगी6 ने भी माना है । प्रकरण एवं अभिप्राय के अनुसार जिस समय जिस देवता की आराधना की गई है उस समय उसी का महत्त्व दर्शाया गया है।

---

1. इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया भाग - 1 पृष्ठ 404
2. कीथ : रिलिजन एण्ड फिलासफी आफ द वेद, पृ0 433 हार्वर्ड ओरियण्टल सीरीज, लांगमैन भाग- 32
3. Deussen : Allgemline Geschichte Der philosophy vol. II Page 83.
4. मैक्समूलर : द सिक्स सिस्टम ऑफ इण्डियन फिलॉसफी, भाग दो पेज 32
5. मैक्समूलर : द सिक्स सिस्टम ऑफ इण्डियन फिलॉसफी, भाग दो पेज 39
6. एडोल्फ केगी : द ऋग्वेद , पेज 27

इस प्रकार एक स्थल पर वरूण को अखिल भुवन का अधिपति कहा गया है तो दूसरे प्रकरण में अग्नि को त्रिलोक का शिरोभूत कहा गया है।7

ऋग्वेद में प्रजापति विश्वकर्मा एवं त्वष्टा का वर्णन सर्वोच्च देवता के रूप में किया गया है। जैसे प्रजापति को अधीश्वर एवं समस्त जगत् का स्रष्टा कहा गया है।8 विश्वकर्मा को भी जगत् का स्रष्टा, पालक एवं इन्द्र आदि देवों का निर्माण कर्त्ता तथा उन्हें तत्-तत् पदों पर प्रतिष्ठित करने वाला कहा गया है।9 ऋग्वेद में त्वष्टा को भी द्यावापृथिवी एवं संसार के सभी प्राणियों का सृष्टा कहा गया है।10

भारतीय दर्शन में एकता एवं अनेकता की दृष्टि पायी जाती है। ऋग्वेद में "एकंसद्विप्रा बहुधा वदन्ति"11 के अन्तर्गत यह रूप विद्यमान है। अजत्त्व की अभिव्यक्ति भी पाई जाती है। जहॉ पर षड्लोकों के धारणकर्त्ता को अजन्मा एवं एक कहा गया है।12 इस तरह ऋग्वेद एकेश्वरवाद का समर्थक कहा जा सकता है। भारतीय दर्शन के सम्बन्ध में एक तथ्य और अवलोकनीय है, कि ये परस्पर एक-दूसरे के पूरक हैं। उदाहरण के लिए, न्याय में न्यायविद्या (लॉजिक) तो थी, किन्तु पदार्थ शास्त्र नहीं, जिसे वैशेषिक ने पूर्णता दी। इसी प्रकार वाह्य एवं अन्तः प्रकृति का

---

7. ऋग्वेद : 5/85/3
8. ऋग्वेद 10/121/1-10/
9. ऋग्वेद 10/82/3/
10. ऋग्वेद
11. ऋग्वेद
12. ऋग्वेद : 1/194/46

निरूपण जो न्याय वैशैषिक में उपलब्ध नहीं था, सांख्य और योग ने इस कमी को पूरा किया तथा कर्म एवं ज्ञान के अनुपलब्ध गम्भीर विवेचन को क्रमश: मीमांसा एवं वेदान्त ने पूर्ण किया। इस दृष्टि से यदि देखा जाए तो भारतीय दर्शन के उत्तरोत्तर विकास की परम्परा में वेदान्त पूर्णता का ही पर्याय है। इसमें न्याय की न्यायमीमांसा भी है तथा वैशेषिक की पदार्थ मीमांसा भी, सांख्य योग का प्रकृतिपुरुष चिन्तन भी एवं मीमांसा की कर्म योजना भी। अत: इन सभी की समाहृति उत्तरमीमांसा अर्थात् वेदान्त के अद्वैत ब्रह्मज्ञान सागर में आकर होती है।

इस प्रकार भारतीय दर्शन के अहम् सिद्धान्तों के सम्बन्ध में दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि षड्दर्शन में एक समन्वयात्मक एवं समग्र दृष्टि है जो परस्पर विरोध प्रतीति है, वह स्वतंत्र चिन्तन की द्योतक है। इन न्यूनाधिक विरोधी विचारों से यह भी सिद्ध होता है कि भारतीय दर्शन में कट्टरपन्थी अथवा अन्धानुकरण नहीं है। यह समन्वय भाव केवल आस्तिक दर्शनों तक ही सीमित नहीं है, अपितु नास्तिक दर्शनों के अन्तर्गत भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है। जैसे — चार्वाक शरीर को ही आत्मा कहता है ''शरीरअमात्मेति'' । जो न्यायादि में वर्णित आत्मतत्त्व के चिन्तन की स्वीकारोक्ति ही है। इसी प्रकार जैन दर्शन का स्याद्वाद एवं बौद्धों का शून्यवाद एवं विज्ञानवाद भी औपनिषद् आत्मवाद की ही पृष्ठभूमि पर आधारित है। जिस प्रकार आत्मा निराकार एवं निरूप है, उसी प्रकार विज्ञान एवं शून्य भी निराकार तथा निरूप हैं। इस प्रकार यदि बौद्ध को प्रच्छन्नात्मवादी कहा जाए तो अनुचित न होगा।

दर्शन का मानव जीवन में महत्त्व

दर्शन का मानव जीवन में अत्यधिक महत्त्व है। दर्शन के द्वारा मनुष्य को एक दृष्टि प्राप्त होती है। हेगल के अनुसार 'दर्शनशास्त्र का इतिहास अपने सही अर्थों में भूतकाल मात्र का ही प्रतिपादन नहीं करता है बल्कि नित्य शाश्वत एवं वास्तविक वर्तमान काल के साथ भी सम्बन्ध रखता है, और अपने परिणाम रूप में मानव बुद्धि की नैतिक ह्रास का एक अजायबघर न होकर उस देवालय के समान है जिसमें समस्त मानव बुद्धि की अन्तर्निहित तर्क की भिन्न भिन्न स्थितियों के प्रतिनिधिस्वरूप देवताओं के समान आकृतियाँ सुरक्षित रखी हई हैं'13 भारतीय दर्शन का इतिहास वह नहीं है जैसा कि पहले साक्षात्कार में प्रतीत होता है अर्थात् केवल पारमार्थिक विचारों का अनुक्रम, जिसमें एक के बाद दूसरा चिंतन आता है। दर्शनशात्र को मनोरंजन का साधन बनाना बहुत सरल है, उन लोगों के लिये जो एन्द्रिय विषयों में ही लिप्त रहते हैं और एक अव्यवस्थित रूप में विचार करते हैं। दार्शनिक समस्याएं अवास्तविक प्रतीत होती हैं और उन्हें इस विषय में निस्सारता की गंध आती है। आलोचक दार्शनिक वाद-विवाद को व्यर्थ समय नष्ट करने वाली तार्किक काट-छाँट एवं ऐसा बौद्धिक इंद्रजाल समझता है जो पहले मुर्गी या पहले अण्डा१४ जैसी पहेलियों से भरा है । भारतीय दर्शन में विवाद विषयक समस्याएं बहुत प्राचीन समय से सभी मनुष्यों को उलझन में डालती आई हैं और उनका समाधान संतोषजनक रूप में

---

13. लॉजिक' पृ0 137, वैलेस कृत अनुवाद
14. सैम्युअल : 'लक ऑर कनिंग'

नहीं हो सका। ऐसा मालूम पड़ता है कि आत्मा एवं परमात्मा को जानने की उत्कट इच्छा मनुष्य जाति की अनिवार्य आवश्यकताओं का विषय रही है। प्रत्येक विचारशील व्यक्ति जब इस संदर्भ पर चिंतन करता है कि वह बिना कहीं बीच में ठहरने के जन्म एवं मृत्यु के बीच जीवनरूपी बाढ़ में बहता है तथा जिस निरन्तर बहती हुई धारा की बाढ़ में वह कभी ऊपर की ओर तो कभी नीचे की ओर उछाल दिया जाता है, तब वह यह प्रश्न करने के लिये मजबूर हो जाता है कि मार्ग की कुछ छोटी-छोटी ध्यान बंटाने वाली घटनाओं को छोड़कर अंततोगत्वा इन सब गति का प्रयोजन अथवा साध्य क्या है? इस प्रकार दर्शन शास्त्र मानवीय हितों का विषय है । भारतीय दार्शनिकों के परिश्रम के परिणाम, मानव ज्ञान की उन्नति के लिए इतने महत्त्व के हैं कि उनमें प्रकट भूलों के रहते हुए भी, उनके ग्रन्थों को आलोचक अध्ययन के योग्य समझते हैं । यदि मिथ्या तर्क जिसने भूतकाल में दार्शनिक पद्धतियों का विनाश किया, दर्शनशास्त्र को एकदम त्याग देने का कारण हो सकता है, तब केवल भारतीय दर्शन को ही क्यों, सभी प्रकार के दर्शनशास्त्र का परित्याग कर देना चाहिए। अन्ततः अविचल सत्य का अवशिष्ट अंश जिसे मानवीय विचारधारा की महत्त्वपूर्ण देन के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। यहाँ तक कि पाश्चात्य दार्शनिक प्जेटो एवं अरस्तू के विचारों को भी इनका अंश मिला, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है । ग्रीक दार्शनिक प्लेटो की अत्यधिक जोशीली कविताओं अथवा डेकार्ट के निर्जीव रूढ़िवाद का, अनुभववादी दार्शनिक ह्यूम के शुष्क अनुभूतिवाद एवं हेगल के भ्रामक हेत्वाभासों का मजाक उड़ाना सरल है, किन्तु इस बात में बिल्कुल संदेह नहीं है कि हमें इन सबके होते हुए भी इन सबके अध्ययन से लाभ होता है। यहाँ तक कि भारतीय दार्शनिकों द्वारा अविष्कृत थोड़े से महत्त्वपूर्ण तथ्यों

ने मानवीय विचारशास्त्र के इतिहास की रचना की है, तो भी वादरायण अथवा शंकर प्रभृति द्वारा प्रकट किए गए संश्लेषणात्मक एवं क्रमबद्ध विचार मानवीय विचारशास्त्र में युगान्तरकारी घटनाओं के रूप में मानवीय प्रतिभा के स्मारक के रूप में विद्यमान रहेंगे।15 भारतीय दर्शन अपने आप में भारत के शानदार भूतकाल का सही-सही विवरण प्रस्तुत करता है। वर्त्तमान समय में एक औसत दर्जे का हिन्दू अपने प्राचीन दर्शनशास्त्र बौद्ध दर्शन, अद्वैतवाद एवं द्वैतवाद सबको एक समान मानता है। इन दर्शनों के रचयिताओं की पूजा ईश्वर की तरह होती है। इसका (भारतीय दर्शन का) अध्ययन हमारे सामने स्थिति को स्पष्ट कर सकता है और अधिक संतुलित रूप में दृष्टिकोण को एवं मन को इस निरंकुश भाव से, कि प्राचीन जो कुछ है अपने आप में सम्पूर्ण है उसे दूर करके हमें स्वतंत्र विचार करने योग्य बना सकता है। प्रामाण्य की दासता से मन की इस प्रकार की मुक्ति एक आदर्श है, जिसके लिए सतत् प्रयत्नशील होना चाहिए क्योंकि जब दासता के बंधन से बुद्धि स्वतंत्र हो जाएगी तब मौलिक विचार एवं रचनात्मक प्रयत्न भी सम्भव हो पाएंगे। वर्त्तमान समय के भारतीयों के लिए अपने देश के प्राचीन इतिहास का सिलसिलेवार ज्ञान होना एक विषादात्मक संतोष भी हो सकता है। जैसे वृद्ध पुरुष अपनी युवावस्था

---

15. पश्चिम के अनेक दार्शनिक भारतीय दर्शन के महत्त्व को मानते हैं । इसके दूसरी ओर जब हम ध्यान देकर पूर्वी देशों की कवितामय एवं दार्शनिक आंदोलनों का अध्ययन करते हैं और उन सबसे भी ऊपर भारतीय विचारधाराओं का अध्ययन करते हैं जिनका अब यूरोप में प्रसार बढ़ रहा है। हमें उनके अंदर गंभीर सत्य दिखलाई पड़ता है और जिनकी प्रतिद्वन्द्विता में यूरोप के बड़े-बड़े मेधावी विद्वानों के विचार तुच्छ रह गये हैं और हमें जबरदस्ती पूर्व के सामने घुटने टेक देने पड़ते हैं।

के संस्मरण से संतोष प्राप्त करते हैं, इसी तरह दूषित वर्त्तमान को भूलने का एक ही रास्ता है कि हम अपने सुन्दर अतीत का समग्रता से अध्ययन करें। 16

इस अध्ययन प्रक्रिया और जटिल समझे जाने वाले अपने दार्शनिक विचारों को सामान्य जन तक पहुँचाने का सबसे सरल माध्यम नाटक की विधा ही हो सकती है क्योंकि किसी भी विषय को अध्ययन, श्रवण, मनन, निदिध्यासन की अपेक्षा प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा अधिक सरलता से समझा जा सकता है।

संभवत: इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए ही श्री कृष्ण मिश्र जी ने 'दर्शन' को सामान्य जन तक पहुँचाने के लिए 'प्रबोधचन्द्रोदय' की रचना की और आज के पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित भारतीय समाज में ऐसे प्राचीन धरोहर के रूप में पड़े इस 'प्रतीक नाटक' की समीक्षा बड़ी ही समीचीन प्रतीत होती है।

---

16. डा0 राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन पेज 45-46

द्वितीय अध्याय

प्रतीक शब्द का संस्कृत साहित्य में प्रयोग एवं प्रतीक नाटक

द्वितीय अध्याय

प्रतीक शब्द का संस्कृत साहित्य में प्रयोग एवं प्रतीक नाटक

1. संहिताओं में प्रतीक शब्द

प्रतीक नाटक की विशिष्टता का प्रतिपादन करने के पूर्व हमें यह विचार करना चाहिए कि संस्कृत साहित्य में कितने प्राचीनकाल से एवं किन किन अर्थों में प्रतीक शब्द का प्रयोग हुआ है। संस्कृत साहित्य में सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद है। इसलिए सर्वप्रथम हमें वेदों में प्रयुक्त 'प्रतीक' शब्द के अर्थ पर चिन्तन करना होगा। ऋग्वेद में प्रतीक शब्द का प्रयोग कई स्थानों पर हुआ है। एक स्थान पर '**यो दत्रवां उषसो न प्रतीकम्**' [1] के रूप में अर्थात् जो उषा की मूर्ति के समान दानशील हो, इसका प्रयोग हुआ है। इस स्थान पर प्रतीक शब्द का प्रयोग मूर्ति के रूप में हुआ है। एक स्थान पर एक पंक्ति मिलती है - '**जीमूतस्यैव भवति प्रतीकं यद् वर्मी यति समदामुपस्थे**'[2] अर्थात् बादल के प्रतिरूप में दिखाई पड़ता हुआ कवचधारी युद्ध के बीच जाता है। इस स्थान पर प्रतीक शब्द का प्रयोग प्रतिरूप के अर्थ में हुआ है। तीसरे स्थान पर उल्लिखित है '**सुसंहक ते स्वनीकं**

---

1. ऋग्वेद संहिता - 6/50/8
2. ऋग्वेद संहिता - 6/75/1

प्रतीकम्'[3] अर्थात् हे अग्नि देवता, तुम्हारी सुन्दर ध्वजा वाला प्रतीक(चिह्न) देखने में बहुत शोभायमान है। यहाँ पर प्रतीक शब्द चिह्न के अर्थ में है। प्रतीक शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में एक स्थान पर रूप के अर्थ में किया गया है यथा **'इन्धे राजा समर्थो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन'**[4] अर्थात् मैं नमस्कारों द्वारा राजा (वैश्वानर अग्नि) को उसके अनुगामियों सहित प्रज्जवलित करता हूँ । जिस अग्नि का प्रतीक (रूप) घी से सना हुआ है। एक अन्य स्थान पर **'वि सानुना पृथिवी सस्त्र उर्वी पृथु प्रतीकमध्येधे अग्निः**[5] आया है जिसका तात्पर्य यह है कि 'पृथ्वी के विस्तृत अङ्गों के ऊपर अग्नि प्रज्जवलित होती है'। इस स्थान पर प्रतीक शब्द का अर्थ अंग है । इसी पंक्ति के बारे में आचार्य सायणाचार्य ने लिखा है - **'तथाग्निः पृथु विस्तीर्ण' प्रतीकं पृथिव्या अवयवम्''** इस तरह कई स्थानों पर क्रमशः शरीर[6] मुख[7] रूप[8] इत्यादि अर्थों में भी प्रतीक शब्द का ऋग्वेद में प्रयोग हुआ है।

---

3. ऋग्वेद संहिता - 7/3/3
4. ऋग्वेद संहिता - 7/8/1
5. ऋग्वेद संहिता - 7/36/1
6. ऋग्वेद -स आहुतो विरोचतेऽग्निरीकेन्यो गिरा सुचा प्रतीकमञ्चते- 11/118/3 'शरीर' के अर्थ में
7. ऋग्वेद 10/88/19 'यावन्मात्रं उषसो न प्रतीकं, सुपर्ण्यों 3 वसते मातरिश्वः अर्थात् जब तक वायु उषा के मुख को नहीं ढक लेता वहां 'मुख' अर्थ में
8. ऋग्वेद 10/118/8

2. ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रतीक

संहिता के पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों में भी 'प्रतीक' शब्द का प्रयोग कई स्थानों पर हुआ है। जैसे शांख्यायन ब्राह्मण में एक स्थान पर प्रतीक शब्द का 'संकेत' या 'द्योतक' अर्थ में प्रयोग हुआ है। '**विभक्तिभि: प्रयाजानुयाजान्यजत्यर्तवो वे प्रयाजानुयाजा ऋतुभ्य ए नं तत्समाहरत्यग्र आयाहि वीतयेऽग्निं दूतं वृणीमहेऽग्निनाऽग्नि: समिध्यतेग्निर्वृत्राणि जङ्घनदग्ने: स्तोमं मनामहे ग्रायो मर्त्यो दुव, इत्येतासामृचां प्रतीकानि......**' [9] इस स्थान पर प्रयुक्त प्रतीक शब्द का ऋचाओं के प्रतीक अर्थात् संकेत या द्योतक के रूप में प्रयोग हुआ है। शांख्यायन ब्राह्मण में ही एक अन्य स्थान पर इसी अर्थ में प्रतीक शब्द का उल्लेख किया गया है।

इसके पश्चात शतपथ ब्राह्मण में प्रतीक शब्द का प्रयोग तीन स्थानों पर मुख, संकेत इत्यादि के रूप में किया गया है।[10] कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय ब्राह्मण में प्रतीक शब्द का 'प्रतिरूप' के अर्थ में प्रयोग हुआ है।[11] इसी तरह अथर्ववेद के गोपथ ब्राह्मण में '**तानग्नि। मुखेनान्ववग्यन्' यदाग्निमनष्टुपसदा प्रतिकानि भवन्ति**' - 'प्रतिकानि' शब्द का अङ्गों के रूप में प्रयोग हुआ है।[12]

---

9. शांख्यायन ब्राह्मण - 1/4

10. शतपथ ब्राह्मण - ''सोऽन्नमत्ति प्रतीकेनेति मुखं प्रतीकं'' 14, 4, 3, 7 तथा द्रष्टव्य - 14/9, 1, 5, एवं 14, 4,3, 1

11. तैत्तरीय ब्राह्मण - भाग 2, ''जीमूतस्यैव भवति प्रतीकमित्याह'' 3/9/4/3

12. गोपथब्राह्मणोत्तर भाग - 2/2/8

उपनिषद् ग्रन्थों में प्रतीक

बृह दारव्यक उपनिषद् में तीन स्थानों [13] पर मुख एवं संकेत के अर्थ में प्रतीक शब्द का उल्लेख हुआ है। इसमें प्रथम अध्याय में पंचम ब्राह्मण के द्वितीय मंत्र में **"सोऽन्नमत्ति प्रतीकेनेति मुखं प्रतीकं मुखेनेत्येतत्" प्रतीक शब्द 'मुख' के रूप में** प्रयोग हुआ है। छान्दोग्य उपनिषद् के प्रथम अध्याय के प्रथम मंत्र के भाष्य में प्रतीकोपासना के रूप में प्रतीक शब्द का प्रयोग किया गया है।[14] इसी तरह पारस्कर गृह्य सूत्र में प्रतीक शब्द का अर्थ अंग के रूप में किया गया है।[15]

पुराणों एवं काव्यों में प्रतीक

भागवत पुराण, वायुपुराण एवं महाभारत इत्यादि ग्रन्थों में प्रतीक शब्द का इन्हीं अङ्ग, अवयव, रूप इत्यादि अर्थों में प्रयोग हुआ है।[16] इसके अतिरिक्त शिशुपालवध काव्य के अठारहवें सर्ग के 79वें श्लोक में भी प्रतीक शब्द का प्रयोग अवयव के अर्थ में हुआ है।[17]

---

13. क – 'यो वेतामक्षितिं वेदसोन्नमत्ति प्रतीकेन' 1,5,1
    ख – 'इति ह प्रतीकान्युदाजहार' 6, 2, 3
14. छान्दोग्योपनिषद् – 'चार्चादिवत्परस्यात्मनः प्रतीकं सम्पद्यते। एवं नामत्वेन प्रतीकत्वेन परमात्मोपासनसाधनं.....'
15. पारस्कर गृह्यसूत्र – 3/16/1
16. मोनियर विलियम्स डिक्शनरी, पृ0 675
17. कीर्णारेजे साजि भूमिः समन्तादप्राणद्भिः प्राणभाजां प्रतीकैः वह्वारम्भैरर्धसंयोजितैर्वा रूपैः स्रष्टुः सृष्टिकर्मान्तशाला ।
    शिशुपालवधम् 18/79

कोशों में प्रतीक शब्द का प्रयोग

प्राचीन वैदिक संहिता काल से ही प्रचलित इस प्रतीक शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थों का संग्रह अमर कोश[18], शब्द रत्न समन्वयकोश[19], मेदिनी कोश[20], वाचस्पत्यम्[21] आदि प्राचीन कोशों में निहित है। इन्हीं अर्थों को वामन शिवराम आप्टे[22] मोनियर विलियम्स[23] आदि अर्वाचीन कोशकारों ने भी स्वीकृत किया है।

---

18. अङ्ग प्रतीकोऽवयवोंऽपघनोऽथ कलेवरम्।
    गात्रं वयु: संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रह: ॥ अमरकोश - 2/6/70

19.क अङ्गक्ष्माभृत्पादपयोरङ्गं चाान्तिकात्रयो: ।
    प्रतीकोपाययो: पुंसि भूमि नीवृति गद्येत ॥ शब्दंरत्नसमन्वय कोंष पृ0 59, का0 2

  ख प्रतिकूले प्रतीक: स्यात्तथाऽवयवमात्रके। शब्द रत्नसमन्वय कोष, पृ0 20 का0 14

20. मेदिनीकोश- अङ्गंगात्रे प्रतीकोपाययो: पुंभू न्मि निवृत्ति ।

21. वाचस्पत्यम् षष्ठ भाग, पृ0 4457, प्रति+कन् नि0 दीर्घ: अवयवे, प्रतिरूपे च

22. संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी - वामन शिवराम आप्टे, पृ0 360
    प्रतीक- डाइरेक्टेड आर टर्न्ड, टुवर्ड्स, इनवर्टेड, अनफेवरेबुल, कन्ट्रेरी, एडवर्स, एलिमेम्बर

23. संस्कृत- इंगलिश डिक्शनरी - मोनियर विलियम्स पृ0 675
    प्रतीक - टर्न्ड आर डायरेक्टेड टू वर्ड्स, एडवर्सकन्ट्रेरी, रिवर्स्ड शेष, लुक, अवीरेन्स, फेस, लिम्ब, पोर्सन, मेम्बर

प्रतीक शब्द की उत्पत्ति

प्रतीक शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जा सकती है – **'प्रतीयते ज्ञायते वा इति प्रतीकम्'** [24] अलीकादयश्च सूत्र (**प्रति** + **इण्** + **कीकच्**) से प्रतीक शब्द की उत्पत्ति हुई है। इस तरह 'जिससे जाना जाय' या 'जो जनावे' उसे प्रतीक कहते हैं। अतः प्रतीक शब्द अङ्ग , अवयव, शरीर, मूर्त्ति वाची सिद्ध होता है।

प्रतीक नाटक पद की साहित्यशास्त्र में व्याख्या

'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक में अमूर्त्त भावों का मानवीकरण किया गया है। यह अमूर्त्त पात्र काम, क्रोध आदि भावनाओं के द्योतक या प्रतीक हैं। भौतिक जगत् में मूर्त्त रूप में इनकी सत्ता नहीं है। इसलिए नाटकों को प्रतीक नाटक कहा गया है। इस नाटक में इस प्रकार कल्पित मूर्त्त पात्रों को रंङ्गमंच पर लाया गया है और उनके माध्यम से दार्शनिक, धार्मिक एवं सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। इन नाटकों की सामान्य नाटकों से अलग एक प्रधान विशिष्टता यह है कि सामान्य नाटकों के पात्र भौतिक जगत् के स्त्री, पुरुष या जगत् के देवी – देवता इत्यादि होते हैं। जबकि प्रतीक नाटकों के पात्र अमूर्त्त ऐतिहासिक, पौराणिक तथा मानवीय भावनाएं भी होती हैं। रसाभिव्यंजना के लिए ये भावनाएं मानवपात्रों की भूमिका में प्रस्तुत की जाती है।

अब सवाल यह उठता है कि रसाभिव्यंजना के अलावा भावनाओं को रङ्गमंच पर लाने के लिए और कौन-कौन से अभिप्राय हो सकते हैं – 1. मानव रूप में नाटक के पात्रों

---

24. उणादि प्रकरण – सिद्धान्त कौमुदी 4/65

का चित्रण करने से विषयबोध में सहृदय को सुविधा होती है। 2. इसके साथ ही दुरूह अमूर्त्तता के नष्ट हो जाने से गूढ़ दार्शनिक तत्त्व बोध में एक विशेष चमत्कार की आभा प्रकट हो जाती है। 3. अमूर्त्त के मूर्त्तीकरण में काव्य की एक नई विधा का भी एक अद्‌भुत आकर्षण है।

मूर्त्तत्व की ओर नाटक रचना की यह अभिरुचि प्रबोधचन्द्रोदय नाटक को नाटक की अन्य विधाओं से पृथक कर निस्सन्देह एक अक्षुण्ण विशिष्टता प्रदान करती है। तथापि नाटक के रचनाप्रकार में अन्य नाटकों से इसमें कोई दूसरा भेद नहीं आता। कदाचित् इसीलिए प्राचीन शास्त्रीय ग्रन्थों में प्रबोधचन्द्रोदय जैसे नाटकों का भिन्न रूप में वर्गीकरण नहीं किया गया है। न ही इसके लिए कोई अलग शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया गया। जिसके फलस्वरूप अमूर्त्त के मूर्त्तत्त्व पर मूलतः आधारित इस प्रकार की रचना का मूर्त्तिवाचक प्रतीक शब्द के द्वारा नामकरण किया जाना सर्वथा उचित प्रतीत होता है। आचार्य पंडित बल्देव उपाध्याय ने भी प्रबोधचन्द्रोदय प्रभृति नाटकों को प्रतीक नाटक ही कहा है।[25] इसके अतिरिक्त अनेक विद्वान भी इनको प्रतीक नाटक ही कहते हैं।[26]

---

25. 'संस्कृत साहित्य में एक नए प्रकार के रूपक उपलब्ध होते हैं, जिसमें श्रद्धा, भक्ति आदि अमूर्त्त पदार्थों को नाटकीय पात्र बनाया गया है। कहीं तो केवल अमूर्त्त पदार्थों की मूर्त्त कल्पना उपलब्ध होती हैं और कहीं पर मूर्त्त, अमूर्त्त का मिश्रण है। साधारण नाटक के लक्षण से इसमें किसी प्रकार का पार्थक्य नहीं मिलता, इसलिए नाट्य के लक्षणकर्ताओं ने इसका पृथक विभाजन नहीं किया। यहाँ इस प्रकार के नाटकों को प्रतीक नाटक कहा गया है।

    संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय पृ0 615

26. हिन्दी नाटक का उद्‌भव और विकास, डा0 दशरथ ओझा

    डा0 दशरथ ओझा ने ऐसे नाटकों को प्रतीकात्मक या भावात्मक नाटक माना है।

प्रतीक नाटकों को अंग्रेजी भाषा में (एलागोर्किल ड्रामाज) कहते हैं। एलागोर्किल ड्रामाज दो शब्दों से मिलकर बनता है एलो तथा एगोरियन, अर्थात् एलो का तात्पर्य है 'कुछ अन्य' तथा एगोरियन का अभिप्राय 'कहना' होता है अर्थात् एलिगरी का तात्पर्य हुआ किसी चीज के बारे में कहना। इस तरह एलिगरी शब्द हिन्दी के अन्योक्ति शब्द के अधिक करीब है। एनसाइक्लोपेडिया[27] में इसका अर्थ स्पष्ट किया गया है।

एलीगोरिकल शब्द का प्रयोग इस नाटक के लिए लगभग सभी **पौरस्त्य** एवं पाश्चात्य दार्शनिकों ने किया है। इस शब्द से यह तर्क अपने आप उठता है कि एलीगोरिस में तो अन्य अर्थ ही अभीष्ट एवं अधिक प्रिय होता है। वाच्यार्थ उसमें प्रधान नहीं रहता। संस्कृत के अप्रस्तुत प्रशंसा आदि अलङ्कारों में एवं हिन्दी के अन्योक्ति अलङ्कार में ही इसकी झलक दिखाई पड़ती है। अत: इस नाटक को 'एलीगोरी' नाम देना उचित प्रतीत नहीं होता । शेल्डान चेनी ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ रंगमंच में एक अन्य मोरालिटी नाटक का विस्तृत वर्णन करते हुए कहा है— 'जिस समय यह मानवीय स्वर चमत्कार नाटकों में आने लगा था - एलिजाबेथीय नाटककारों ने बाद में इस स्वर को अपनाना शुरू कर दिया था। 'मोरालिटी' नाटकों में एक बिल्कुल दूसरे प्रकार का विकास होने लगा था। इंग्लैंड

---

27. (A) Allegory : "A figurative representation conveying a meaning other than and in addition to literal. "

चैम्बर्स डिक्शनरी- Encyclopaedia Britanica, Vol. 1 page 645

(B) Allegory : (from Greek allo, something else, and agoreuein, to speak) a figurative representation in which the signs (words or form) signify something besides their literal or direct meaning, each meaning being complete in itself.

में ही इस नाट्यरूप को पूर्णतया विकसित होने का अवसर मिला। सन् 1405 में अभिनीत 'कैस्टल आफ पर्सीवेरेंस' इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। मोरालिटी का नाटक के क्षेत्र में वही स्थान है जो 'एलीगोरी' का काव्य में है। इसमें पात्र मानव गुणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कथानक एवं संघर्ष का आधार मनुष्य के सद् एवं असद् गुणों के या मनुष्य के लिए पुण्य एवं पाप के बीच का द्वन्द्व होता है। हालांकि ऐसे कथानक में नाटकीयता के गुण बहुत कम होते हैं । इसके दो उदाहरण अवशिष्ट हैं। वे एक को छोड़कर हमें चमत्कार नाटकों से कम रूचिकर लगते हैं क्योंकि आदि से लेकर अंत तक ये अनुत्तेजित होते हैं। यद्यपि इनमें प्राचीन नाटकों के दो पात्रों, पाप एवं शैतान का समावेश न होता तो हमें ये नैतिकतापरक नाटक असहनीय प्रतीत होते।

आधुनिक सामाजिक घटनाओं पर आधारित विश्रृंखलित नाटकों के अभिनेताओं की भांति ही पाप लगातार शैतान को छेड़ता रहता है । इस तरह वह धीरे धीरे बढ़ती क्रियाशीलता को गति प्रदान करता है और नाटक के वायवी पात्रों की अस्पष्टता एवं धुंधलेपन के अभिशाप को हटाता रहता है। हम निश्चित ही अपनी नैतिक प्रकृति के कारण उस समय ताली बजाकर अपनी खुशी व्यक्त करते हैं जब पुण्य की विजय होती है, जब सुबुद्धि, गंभीरता, उदारता, विनयशीलता अपनी ओर मनुष्य को आकृष्ट करती है हम अपनी नैतिक प्रकृति के कारण उस समय भी हर्ष व्यक्त करते हैं जब मूर्खता, पेटूपन, दम्भ, कामुकता और ईर्ष्या का पतन होता है। सभी पात्र बिल्कुल वायवी हों ऐसी बात नहीं है। कल्पनाशीलता, बुरी आदतें, नेक सलाह, बुरा नतीजा, दुर्भाग्य, उदरशूल, दवा की गोलियाँ यहाँ तक कि प्रात: का नाश्ता, भोजन जैसे सहभोज भी इन अभिनयों में आते हैं। निश्चित ही इन नाटकों में ऐसे पात्रों की रचना होती थी जो पात्र विचारपरक एवं प्रचुर

मात्रा में मानव चरित्र परक होते थे। जैसे ढोंग, **भद्रता**, गप जैसे पात्र व्यंग्य सुखान्त नाटकों और पात्र-प्रधान सुखान्त नाटकों का वास्तविक प्रारम्भ यहीं से होता है।

एवरीमैन एक ऐसा नाटक है जिसे अपवादस्वरूप कहा जा सकता है क्योंकि यहाँ नैतिक शिक्षा एवं उपदेश का सामंजस्य, भ्रातृत्व, सत्कार्य, मृत्यु तथा इसी प्रकार के अन्य पात्रों के साथ कर दिया गया है और एवरीमैन की आत्मा में निरन्तर संघर्ष होता रहता है। उसमें हमें एक नाटकीय आकर्षण, विकर्षण दिखाई पड़ता है। सोलहवीं सदी में इस प्रकार के नाटकों के प्रति लोगों के मन में एक विशेष आकर्षण था। उसके अनेक शुरू के छिपे संस्करण प्राप्त होते हैं।

डच भाषा में उसका एक अनुवाद भी मिलता है। (जिस तरह कुछ लोग विश्वास करते हैं, डच भाषा का यही मूलग्रन्थ है जिससे अंग्रेजी संस्करण तैयार किए गये थे। हमारे युग में इस नाटक को प्रसिद्धि प्राप्त हो गयी है। जर्मन एवं अंग्रेजी भाषाओं में इसका उच्चकोटि का अवतरण हुआ है।[28]

संस्कृत एवं अंग्रेजी के एक समान लगने वाले इन प्रतीक शैली के नाटकों को जो एलीगोरी और मोरालिटी दो भिन्न संज्ञाएं दी गयी हैं व अलग अलग वैचारिक विभिन्नता की सूचक हैं। मोरालिटी शैली के समर्थकों का ध्यान नाटक के उद्देश्य पर रहा होगा कि इसमें नैतिकता की प्रतिस्थापना की जाए लेकिन संस्कृत के प्रतीक नाटकों को जिन विद्वानों ने एलीगोरी कहा उनका उद्देश्य मुख्यत: नाटक की रूपरेखा एवं ढांचे को विकसित करना था।

---

28. शैल्डानचेनी रंगमंच, अनुवादक श्रीकृष्ण दास पृ0 210-213

इन नाटकों में अमूर्त्त भावनाओं को जिस नाटकीयता के साथ प्रस्तुत किया जाता है उसे ध्यान में रखते हुए इन्हें एलीगोरिकल नाटक कहना अधिक उपयुक्त लगता है। हालांकि अंग्रेजी के मोरालिटी नाटक को भी उनके ढांचे एवं उनकी प्रकृति के अनुसार संज्ञायित किया जाय तो इन्हें भी एलीगोरिकल ड्रामा ही कहना उचित होगा। पाश्चात्य विद्वानों ने नाट्य के इस विशिष्ट रूप की ओर ध्यान नहीं दिया बल्कि इन नाटकों के संदेश को ध्यान में रखकर ही इनका नाम मोरालिटी नाटक किया गया। नामकरण में प्रचलन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रमाण हुआ करता है। क्योंकि **योगाद् रूढ़िर्बलीयसी** एक सर्वस्वीकृत तथ्य है। बहुचर्चित शब्द 'रूपक' की चर्चा करना भी यहाँ जरूरी है। सामान्य रूप में 'रूपक' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है प्रथम नाट्यरूप में एवं द्वितीय अलङ्कार रूप में। अवस्थानुकरण को ही नाट्य कहा जाता है, इसी को नाट्य रूप तथा आरोप होने के कारण यही नाट्यरूप रूपक भी कहलाता है।[29] रूपक अलङ्कार वहाँ प्रयोग किया जाता है जहाँ पर उपमान एवं उपमेय का अभेद आरोपित होता है।[30] अर्थात् उपमान एवं उपमेय में अभेद का आरोप ही रूपक अलङ्कार है। इसमें अत्यधिक समानता होने के कारण यह अभेदारोप होता है। रूपक अलंकार में उपमान एवं उपमेय दोनों की समान सत्ता होती है। उनकी तद्रूपता में ही उनकी पृथकता की झलक मिलती है लेकिन इन दो रूपों में रूपक

---

29. अवस्थानुकृतिर्नाट्य रूपं दृश्यतयोच्यते
रूपकं तत्समारोपात् दशधैव रसाश्रयम्

दशरूपक, प्रथम प्रकाश, कारिका- 7

30. तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः -

काव्य प्रकाश, दशम उल्लास, पृ0 593

के प्रयोग के अतिरिक्त कुछ विद्वानों के द्वारा रूपक शब्द का प्रयोग तीसरे अर्थ में भी किया गया है।[31]

यहाँ तीसरे अर्थ के प्रयोग के समर्थन में कोई प्रमाण नहीं मिलता। न तो साहित्य शास्त्र में ही रूपक का इस नए अर्थ में प्रयोग मिलता है और न ही किसी आचार्य ने इस अर्थ में रूपक शब्द की विवेचना ही की है। यदि अलङ्कार के रूप में रूपक की ओर देखें तो उसमें आरोप के लिए उपमान एवं उपमेय तत्वों का होना जरूरी है। जबकि नाटकों में अमूर्त्त तत्त्वों को मूर्त्त रूप में ही मंच पर लाया गया है। इस आरोप का मूल-भिन्नता है जबकि यहाँ पर वही अमूर्त्त वस्तु मूर्त्त की जाती है। यहाँ पर दोनों भिन्न व्यक्ति नहीं हैं बल्कि एक ही हैं। इसलिए डा० सरोज अग्रवाल का यह कहना कि 'प्रबोधचन्द्रोदयादि' नाटक रूपक नाटक है, प्रतीक नाटक नहीं, उचित नहीं प्रतीत होता। रूपक को नाट्य एवं रूपक अलङ्कार के रूप में मानना तर्क संगत है।

कुछ विद्वानों ने इन नाटकों को साध्यवसान[32] नाटक की संज्ञा दी है। 'साध्यवसान' पद अतिश्योक्ति अलङ्कार के एक भेद के निर्वचन करने में प्रयोग किया गया है। इस अतिशयोक्ति में आचार्य मम्मट के मतानुसार 'पर' (उपमान) के द्वारा प्रकृत (उपमेय) का निराकरण करके उसके साथ कल्पित अभेद के निश्चय (अध्यवासन) का वर्णन किया

---

31. प्रबोध चन्द्रोदय और उसकी हिन्दी परम्परा

डा० सरोज अग्रवाल, पृ० 31-32

32. संस्कृत ड्रामा - कीथ, अनुवादक - उदयभानु सिंह, पृ० 265

जाता है।[33] या फिर साहित्यदर्पणकाराभिमत अतिशयोक्ति मात्र में अध्यवसान की सिद्धी को अनिवार्य माना गया है।[34] यहाँ पर अध्यवसान पद का तात्पर्य है निश्चय या 'दृढ़तर बुद्धि'।[35]

नागोजी भट्ट ने अध्यवसान पद का अर्थ निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया है:-

''स्वासाधारणधर्मेणानुपादानादनाहार्याभेदधीरिति'' अर्थात् अन्य पदार्थों में किसी अन्य का निश्चय होना या दो पदार्थों में अभेद का निश्चय होना ही अध्यवसान कहलाता है। इसके आधार पर हम प्रतीक नाटकों को साध्यवसान नहीं कह सकते क्योंकि

1. यह पात्र वस्तुतः अपने ही अमूर्त्त व्यक्तित्त्व का निश्चय कराते हैं।

2. इन नाटकों के पात्र किसी अन्य पदार्थ का अध्यवसान नहीं कराते । क्रोध, लोभ इत्यादि क्रोध भिन्न या लोभ भिन्न किसी सत्ता का निश्चय करके प्रस्तुत नहीं किए जाते।

3. जब यहाँ पर दो पदार्थ एक रूप में अध्यवसित नहीं होते तो इन नाटकों को साध्यवसान कहना समीचीन नहीं प्रतीत होता ।

---

33. निगीर्याध्यवसानन्तु प्रकृतस्य परेण यत् -

काव्य प्रकाश, दशम उल्लास, पृ0 628

34. सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते

साहित्य दर्पण, षष्ठ परिच्छेद पृ0 323

35. 'अध्यवसानं **द्रढ़ीयसी बुद्धि**' : इति प्रदीपः

4. अपना निश्चय करना अध्यवसान का लक्ष्य नहीं हो सकता। यह तो केवल बोध मात्र ही है।

कुछ विद्वानों ने इन नाटकों को आध्यात्मिक नाटक कहा है।[36] यह नाम पात्रों की अभिव्यक्ति के प्रकार पर आधारित नहीं हैं। बल्कि पात्रों के चयन के आधार पर आधारित हैं। कई नाटकों का नाम उनके नायकों के आधार पर ही रखा गया है लेकिन क्या ऐसा करना उचित था?

इन नाटकों की विशिष्टता इनके पात्रों का चयन है यह पात्र अधिकतर अमूर्त्त होते हैं । नाटकों के माध्यम से इन्हें मूर्त्त किया जाता है।

प्रतीक नाटकों की विशिष्टताएं :

प्रतीक नाटक दूसरे सामान्य नाटकों से न केवल शिल्प, कथ्य एवं उद्देश्य में बल्कि वातावरण में भी बिल्कुल अलग दिखाई पड़ते हैं। वातावरण का यह अन्तर ही वस्तुत: सबसे बड़ा अंतर है। नाटक में देश काल का अत्यधिक महत्त्व होता है जबकि अन्य कलाकृतियों में इसका उतना महत्त्व नहीं होता। नाटक रंङ्गमंच की दृष्टि से लिखा जाता है और दर्शकों के समक्ष उसके प्रस्तुतीकरण में केवल अभिनेता या सामग्रियाँ ही पर्याप्त नहीं हैं। दर्शकों में नाटक के भावों को व्यक्त कराने के लिये यह आवश्यक है कि अभिनेता को रंङ्गमंच पर उसके देशकाल के साथ प्रस्तुत किया जाय। नाटक का अभिनेता जब अपने

---

36. 'यतिराजविजयनाटकम्' — प्रस्तावना, पृ0 2

तिरूमाला - तिरूपति देवस्थानं तिरूपति से रत्नदीपिका व्याख्या - सहित, 1956 में प्रकाशित 'यतिराजविजयनाटकम्' की प्रस्तावना में ऐसे नाटकों को आध्यात्मिक नाटक कहा गया है।

सम्पूर्ण वातावरण के परिपेक्ष्य में रंङ्गमंच पर प्रस्तुत किया जायेगा तब कोई कारण नहीं है कि दर्शकों में नाटक के मंतव्य के अनुरूप भाव जागृत न हों। प्रतीक नाटकों पर विशिष्टता के आधार पर यह विचार किया जाय तो यह प्रतीत होता है कि सामान्य नाटकों की अपेक्षा इन प्रतीक नाटकों में कथन की शैली और वस्तु तत्त्व की परिकल्पना में काफी अन्तर है। वस्तुतत्त्व को बौद्धिक धरातल पर विश्लेषित करना और व्याख्यायित करने का महत्त्वपूर्ण प्रयास इन प्रतीक नाटककारों ने ही किया। इस दृष्टि से आज की वैज्ञानिक भाषा में ये तथाकथित प्रतीक नाटककार पहले बुद्धिवादी रचनाकार हैं। इन नाटकों में भावतत्त्व की अपेक्षा बुद्धितत्त्व की प्रधानता दी गई है। किसी दार्शनिक समस्याको काव्यात्मक रचना के माध्यम से व्यक्त करना केवल बुद्धितत्त्व के द्वारा ही संभव है।

विषय वस्तु की दृष्टि से प्रतीक नाटक सामान्य नाटकों से अलग है। प्रतीक नाटक में मनुष्य के अमूर्त्त भावों को मूर्त्त स्वरूप प्रधान करके उसमें समस्त मानवीय गुणों का संविधान किया जाता है। जबकि सामान्य नाटकों में लौकिक मनुष्य को, उसके रागद्वेष को और उसके स्थूल क्रियाकलापों को प्रस्तुत किया जाता है इसी तरह सामान्य नाटकों में जहाँ लौकिक मनुष्यों की प्रेमगाथा उनके संघर्षों एवं उनके अलग अलग मनोरोगों को अभिव्यक्ति का विषय बनाया जाता है वहीं पर प्रतीक नाटकों में आध्यात्मिक स्तर पर अमूर्त्त मनोभावों को ही रक्तमांसधारी भौतिक मनुष्य का स्वरूप प्रदान कर दिया गया है। रोचकता के दृष्टिकोण से नीरस एवं शुष्क, पर दार्शनिक सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति इन नाटकों को अत्यधिक महत्त्व प्रदान करती हैं। अतः इन नाटकों में एक उच्च स्तरीय सुसंस्कृत एवं आभिजात्य गुण सम्पन्न वाले दर्शकों की जरूरत पड़ती है। प्रतीक नाटकों की चरित्र चित्रण की दृष्टि से एक विशेषता यह है कि इनमें अमूर्त्त भावनाओं को मूर्त्त पात्रों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। जबकि सामान्य नाटकों में मूर्त्त जीवधारी मनुष्य या देवता आदि पात्र बनते हैं। लेकिन यहाँ पर सबसे अधिक ध्यान देने की बात यह है कि इन अमूर्त्त

एवं अदेह भावनाओं को भी इन नाटकों मे ऐसे सामर्थ्य के साथ रखा गया है कि इनसे स्थूल वास्तविकता ही दिखाई पड़ती है। सचमुच यह चरित्र वास्तविक मानव की तरह गतिमान नजर आते हैं। इनका परस्पर व्यवहार मानवीय दुर्बलता एवं मानवीय सक्षमता के रूप में पद-पद पर दिखाई पड़ता है। हालाँकि प्रतीक नाटकों के चरित्र सही अर्थ में मनुष्य नहीं होते फिर भी उनका विकास नाटककार की सृजनात्मक क्षमता के कारण अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होती। उसमें मानवसुलभ स्वाभाविक गुणों की अभिव्यक्ति निश्चय ही होती है। इनमें से कुछ नाटकों में चरित्र चित्रण की यह स्वाभाविकता सभी स्थलों पर तो नहीं पर कहीं कहीं अत्यन्त सजीव हो उठी हैं। यहाँ सहसा यह विश्वास करने का मन नहीं चाहता कि यह चरित्र किसी दर्शन के सिद्धान्तों की केवल कठपुतली हैं बल्कि उनमें मानवीय व्यापारों का प्रारूप सही सही देखा जा सकता है। इन नाटकों में उनके चरित्र केवल दर्शन के सिद्धान्त भर बने रहते हैं, उनमें जैविक संचेतना अविद्यमान रहती है।

प्रतीक नाटक, रस की दृष्टिकोण से सामान्य नाटकों की अपेक्षा अधिक गंभीर समस्या के साथ अवतीर्ण हुए हैं। सामान्य नाटक जहाँ अपनी सीमा में श्रृंगार एवं वीर को अङ्गीरूप में स्वीकार करते हैं वहां प्रतीक नाटक अपनी सीमा में वीर, भयानक, श्रृंगार, करूण इत्यादि रसों को समेटते हुए शान्त की व्यंजना में पर्यवसित होते हैं।

सामान्य नाटकों में लौकिक जीवन को विषय बनाने के कारण उनमें रागात्मक संवेदनाएं पूर्ण रूप से पाई जाती हैं । मनुष्य के आपसी संबंधों का प्रारूप इनमें अभिव्यक्त होता है। भाई-भाई का प्रेम, भाई-बहन का प्रेम, माँ-बेटे का प्रेम तथा विरोधियों के घात-प्रतिघात आदि स्थूल निदर्शन जो स्वतः पाठकों के हृदय में राग एवं द्वेष उत्पन्न करते हैं।

प्रतीक नाटक में इन विश्वजनीन सम्बन्धों की झलक दिखाई पड़ती है। यद्यपि हन नाटकों का मुख्य अभिव्यङ्गमय सम्बन्ध नहीं बन पाते। यहाँ पर शान्त रस का अखण्ड साम्राज्य ही प्रतिष्ठापित होता है। 'शम' या 'निर्वेद' की परिधि में इनका अंतर्भाव

स्वाभाविक सरलता के साथ इन नाटकों में अभिव्यक्त किया गया है। सभी प्रकार के प्रकाशमान् जीवन के आलम्बन यहाँ एक तात्त्विक चेतना के चमत्कार से अभिभूत हो जाते हैं । वैराग्य की गहरी अन्विति सबको शान्त रस की सिद्धि के लिए गतिशील बनाती है एवं अंततः शांत रस की अभिव्यक्ति के प्रति सभी भाव अपना-अपना व्यक्तित्व एवं अस्तित्व समर्पित कर देते हैं। इस प्रकार प्रतीक नाटक की कई विशेषताएं होती है।

तृतीय अध्याय

उद्भव : प्रतीक नाटक

तृतीय अध्याय

उद्भव प्रतीक नाटक

1. वैदिक साहित्य में प्रतीकात्मकता

भारतीय मानस सदैव से स्थूल से सूक्ष्म की ओर उन्मुख होता है। स्थूल वाह्य जगत् की अपेक्षा आंतरिक भाव सूक्ष्म होता है। वैदिक ऋषियों का आंतरिक भावजगत् की ओर अधिक ध्यान रहा है। इसलिए स्वभावत: इस सूक्ष्म भावात्मक एवं आन्तरिक भावराशि का वर्णन अथवा चित्रण बहुत विशाल पैमाने पर वैदिक युगों से ही होता रहा है। लेकिन इन वर्णनों की बोधगम्यता उतनी आसान नहीं है जितनी कि उस विषय के प्रति आकर्षण एवं उन्मुखता । इसका स्पष्ट कारण यह है कि आभ्यान्तर या आध्यात्मिक जगत् अत्यन्त सूक्ष्म है। अत: इन चित्रणों को अधिक बोधगम्य एवं प्रभावशाली बनाने के लिए इनका वैयक्तीकरण करने और इन अमूर्त्त तत्त्वों को मूर्त्तता प्रदान करने की प्रेरणा वैदिक ऋषियों को निश्चित हुई होगी।

ऋग्वेद में प्रकृति की अमूर्त्त शक्तियों को मूर्त्त रूप में वर्णन करने की चेष्टा की गई है । जैसे शक्ति अधिष्ठातृदेवता [1] इन्द्र के बारे में उल्लेख देखा जा सकता है । इसी

---

1. इन्द्र को शक्ति का स्वामी अर्थात् शचीपति कहा गया है। परवर्ती काल में शची की कल्पना इन्द्र की पत्नी के रूप में कर ली गई। परन्तु ऋग्वेद संहिता में 'शची' शब्द बहुवचन में भी आया है, जैसे शचीभि: (1: 30, 15 : 1, 62, 12 इत्यादि) जिससे इसका 'शक्ति' अर्थ समर्थित होता है।

तरह 'वाक्सूक्त'[2] अमूर्त वाक् मूर्त रूप में अपना परिचय दे रही हैं। अमूर्त्त तत्त्वों को मूर्त स्वरूप देने की यह पहली विधा रूपक अलङ्कार की स्थिति में वर्णन करना या अमूर्त का किसी मूर्त पदार्थ से अभेदात्मक चित्रण करना भी है। इस विधा का प्रयोग ऋग्वेद के सातवें मंडल में आए हुए मंत्र[3] में बताया गया है कि अमूर्त अज्ञान, काम क्रोध, लोभ इत्यादि को इस मंत्र में उलूक, चिड़ा (पक्षी विशेष), भेड़िया व गृध्र से अभिन्न रूप में दर्शाया गया है।

सामवेद में श्रद्धा को माता से अभिन्न रूप में व्यक्त किया गया है।

पितायत्कश्यस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः। [4]

इसी प्रकार यजुर्वेद में भी अनेक शक्तियों का वर्णन मूर्त व्यक्तियों के रूप में किया गया है।[5]

कृष्ण यजुर्वेद में इन्द्रियों का सम्भाषण दिखाई पड़ता है।

---

2. 10/125

3. उलूकं यातुं शुशूलयातुंजहिश्वयातुभुतकोकयातुम्।
   सुपर्णायातुमुत गृधृयातुं दृषदेव प्रभृणरक्ष इन्द्र ॥

4. सामवेद पूर्वार्चिक, आग्नेयकाण्ड, प्रथम प्रपाठक, नवम खण्ड का दसवां मंत्र

5. सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्मेनीयतेऽभीषुभिर्वाजिनइव ।
   हृत्प्रष्ठिं यदजिरं यविष्ठं तन्मेमनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

अहं भटकारं वाक्यं मनश्चार्तीयताम् अहं देवेभ्यो

हव्यं वहामीति वागब्रवीत्, अहं देवेभ्यः इति मनः

तौ प्रजापतिं प्रश्नमैतागम् । सोऽब्रवीत् प्रजापतिर्दूतीरेव तद्‌भटः तुभ्यम् । न वाचा जुहुवन्नित्यब्रवीत् । तस्मान्मनसा प्रजापतये जुह्वति इति।[6]

इस प्रकार के मंत्र संदिताओं में हर तरफ दिखाई पड़ते हैं लेकिन फिर भी इनमें सादृश्य अथवा अभेद के माध्यम से ही अमूर्तों का मूर्त रूप में वर्णन हुआ है। अमूर्तो का मूर्त रूप में साक्षात् वर्णन इसके पश्चात् प्रारम्भ होता है। यह शैली ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों एवं निरूक्त इत्यादि में दिखाई पड़ती है। जैसे शतपथ ब्राह्मण में श्रद्धा एवं इड़ा को मूर्त स्त्रियों के रूप में बताते हुए कहा गया है, श्रद्धा देवो वै मनुः ।[7]

वृहदारण्यक उपनिषद् में एक स्थान पर 'ते हेमे प्राणा प्राणा अहंश्रेयते विवदमाना ब्रह्म जग्मुः । तद्धोचुः को नो वसिष्ठ इति। तद्धोवाच । यस्मिन् व उत्कान्त इदं शरीरं पापीयो मन्यते, स वो वसिष्ठ इति।[8]

---

6. कृष्ण यजुर्वेद 11-5, 11-4

7. शतपथ ब्राह्मण - प्रथम काण्ड, अध्याय 8

8. वृहदारण्यकोपनिषद् - षष्ठ अध्याय, प्रथम ब्राह्मण, मन्त्र 7 से 14 तक ।

वाग्घोच्चक्राम, सा संवत्सरं प्रोष्यागत्योवाच । कथमशकत मदृते जीवितुमिति। ते होचुः यथा कला, अवदन्तो वाचा, प्राणन्तः प्राणेन, पश्यन्तश्चक्षुषा, शृण्वन्तः श्रोत्रेण, विद्वांसो मनसा, प्रजायमाना रेतसैवमजीविष्मेति। प्रविवेश ह वाक् ॥

चक्षुर्होच्चक्राम ------------------- इत्यादि ।

इसी तरह छान्दोग्योपनिषद् अध्याय पांच एवं खण्ड एक में इन्द्रियों के विवाद का वर्णन किया गया है[9]—

अथ ह प्राणा अहं श्रेयसि व्यूदिरेऽ हं श्रेयानस्म्यहं श्रेयानस्मीति ॥6॥

< < < <

< < < <

सा ह वागुच्चक्राम सा संवत्सरं ------------------- प्रविवेश ह वाक्

< < < <

< < < <

मनो हो च्चक्राम तत्संवत्सरं प्रेक्ष्य ---------------- ह मनः ।

---

9. छान्दोग्योपनिषद्, अध्याय 5, खण्ड 1, पृ0 447-452

तम् अशनायापिपासे अकूताम् आवाताम् जहाति। ऐतरेयोपनिषद् अध्याय 1 खण्ड 2

ऐतरेय उपनिषद् में भूख एवं प्यास ईश्वर से कहती है कि हमारे लिऐ भी स्थान की व्यवस्था कीजिए।[10]

प्रश्नोपनिषद् में सभी इन्द्रियों, सभी महाभूतों एवं अंत: करण के बीच परस्पर विवाद होता है -

ते प्रकाश्याभिवदन्ति वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयाम: । तान्वरिष्ठ:

प्राण उवाच । मा मोहमापद्यथाहयेवैतत्पंचधाऽऽत्मानं

प्रविभज्येतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामिति तेऽश्रद्दधाना बभूव ।

सोऽभिमानादूर्ध्वमुत्क्रमत इव तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे

सर्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व ए व प्रतिष्ठन्ते । तद्यथामक्षिका मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मिं श्च प्रतिष्ठमाने सर्वा इव प्रातिष्ठन्त

एवं वाह्मनश्चक्षु: श्रोत्रं च ते प्रीता: प्राण: स्तुवन्ति ॥ 4 ॥[11]

निरूक्त में दिए हुए मंत्र ब्राह्मण संहिता के एक उद्धरण में विद्या ब्राह्मण से बातचीत करती है। इस तरह इन उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि वैदिक साहित्य में

---

10. तम् अशनायापिसे अब्रूताम् आवाताम् । जहाति

ऐतरेयोपनिषद् अध्याय 1 खण्ड 2

11. प्रश्नोपनिषद् द्वितीय प्रश्न 2, 3 4,

प्रारम्भ से ही अमूर्त तत्व मूर्त एवं चेतन रूप से व्यवहार करते हुए दिखाए गए हैं। हालांकि यह मूर्तिकरण मुख्यत: दिव्य तत्वों का है न कि भावतत्वों का ।

रामायण में प्रतीकात्मकता

रामायण में प्रतीकात्मकता का विकास दिव्य तत्वों के मूर्तिकरण से लेकर भावतत्वों के मूर्तिकरण में स्पष्टता के साथ देखा जा सकता है ।

प्रतीक शैली की परम्परा में किंचित् भिन्न रूपों में हमारे आदि कवि ने इस प्रतीक शैली का प्रयोग किया है।[12] हालांकि रामायण में कहीं भी इस तथ्य का स्पष्ट वर्णन नहीं है, फिर भी उसकी रचना शैली पर गम्भीरता से विचार करने पर यह तथ्य आभासित होता है इसमें प्रतीकात्मकता को स्थान दिया गया है। भगवान राम, विवेक के प्रतीक हैं तो रावण मोह का। सीता , विवेक की पत्नी बुद्धि एवं मन्दोदरी य मोह की पत्नी मिथ्यादृष्टि की प्रतीक हैं ।

महाभारत में प्रतीकात्मकता

महाभारत के प्रवर्तक के रूप में महर्षि वेद व्यास ने प्रतीक शैली का यथा योग्य प्रयोग किया है। महाभारत के आदि पर्व में अमूर्त भावतत्व मूर्त मानव सम्बन्ध में कल्पित हुए हैं। धर्म की दस पत्नियां साथ तीन पुत्र और पुत्र-वधुओं का

---

12. प्रो0 कान्ता नाथ शास्त्री तैलंग के मतानुसार

भी महाभारत में वर्णन किया गया है।[13]

महाभारत में यह वर्णन न केवल अमूर्त का मूर्तीकरण है बल्कि अमूर्त का चेतनीकरण या बहुत कुछ अंशों में उसका मानवीकरण भी है । महाभारत काल तक में इस वैयक्तिकरण प्रक्रिया में एक स्पष्ट स्वरूप प्रकट हो गया है। तथापि संवाद इत्यादि के अभाव कारण इस मूर्तीकरण में सशक्तता एवं नाटकीयता नहीं आई। बौद्ध दर्शन के ग्रन्थों में उल्लिखित 'जातक-निदान' कथाओं में भी कहीं कहीं प्रतीक शैली का प्रयोग दिखाई पड़ता है। 'जातक-निदान' कथा के 'अविदूरेनिदान' के 'मारविजय' सम्बन्धी आख्यायिका और 'शन्तिकेनिदान' की अजयपाल के बाद की आख्यायिका में प्रतीकात्मक शैली का अधिकतर प्रयोग हुआ है। किन्तु इस काल तक भी संवादात्मक रीति से तथा अनुभूति के माध्यम से किए गये व्यवहारों का पूर्ण सन्निवेश इन प्रतीक पात्रों के चरित्र में नहीं हो पाया। पात्रों की प्रतीकात्मकता का ढांचा इन कथाओं में तैयार अवश्य हो गया लेकिन उन पात्रों के व्यवहार में स्फुट सजीवता

---

13. कीर्तिलक्ष्मी धृतिर्मेधा, पुष्टिश्रद्धा क्रिया तथा ॥

बुद्धिर्लज्जामतिश्चैव पत्नयो धर्मस्य ता दश ॥

दाराण्येतानि धर्मस्य विहितानि स्वयम्भुवा ॥

त्रयस्तस्य वरा: पुत्रा: सर्वभुत मनोहरा ।

शम: कामश्च हर्षश्च तेजसा लोकधारिणा ॥

कामस्य तु रतिर्भार्या शमस्य प्राप्रिंगना ।

नन्दा तु भार्या हर्षस्य यासुलोका: प्रतिष्ठिता:

महाभारत 66- 14, 15

महाभारत 66-32

महाभारत 66-33

बिल्कुल भी नहीं आई और यह काम या तो ऐसी कथाओं के माध्यम से संभव हो सकता था जिसमें नायक या नायिका स्वयं प्रतीक पात्र के रूप में आए हों या फिर गौण रूप में आए हों। या इन प्रतीक पात्रों की अवतारणा नाटकों के द्वारा की गई हो।

भास के 'बालचरितम्' में प्रतीकात्मकता

संस्कृत साहित्य के सबसे पहले नाटककार महाकवि भास के बालचरित नामक नाटक में प्रतीकात्मक पात्रों के प्रयोग की झलक मिलती है। बालचरितम् की कथावस्तु के अनुसार जब वसुदेव बालक कृष्ण को जमुना के पार ले जाकर नंद को देते हैं तब उस बालक का भार इतना ज्यादा हो जाता है कि नंद उसे आगे लेकर जाने में असमर्थ हो जाते हैं । उस समय कृष्ण के दिव्य अस्त्र और वाहन मूर्त मानव के रूप में दिखाई पड़ते हैं लेकिन ऐसे स्थान पर शुद्ध प्रतीकात्मकता नहीं स्वीकार की जा सकती । क्योंकि ये दिव्य तत्व हैं । अमूर्त भावतत्व या अदृश्य सूक्ष्म तत्व नहीं हैं और दिव्य तत्वों की दिव्यता का फल यह है कि वे जिस रूप में चाहें प्रस्तुत हो सकने की क्षमता रखते हैं । कवि कल्पनामात्र से उसमें मूर्तत्व नहीं आता। जबकि इस बालचरितम् के द्वितीय अंक में अवश्य प्रतीकात्मक प्रयोग की झलक दिखलाई पड़ती है जबकि शाप तथा राज्यश्री स्वयं पात्ररूप में आते हैं। शाप चाण्डाल के भेष में मुण्डमाला पहने हुए कंस के महल में आना चाहता है। दरबान मधूक उसे दरवाजे पर रोकता है। चाण्डाल वेषी शाप अपनी राक्षसी शक्ति के द्वारा उस महल में प्रवेश कर जाता है। उसी समय कंस के राजवैभव की प्रतीक राज्यश्री स्त्री पात्र के रूप में उपस्थित होकर उसको रोकती है। शाप कहता है कि तुम मुझे क्यों रोकती हो, मैं तो भगवान विष्णु की अनुमति से ही यहाँ पर प्रविष्ट हुआ हूँ भगवान विष्णु का नाम सुनकर राज्यश्री उसे जाने देती हैं और स्वयं हट जाती हैं।

चाण्डाल रूप में शाप कंस के पास पहूँच जाता है और कहता है -

अपक्रान्ता राज्यश्रीः । हन्तेदानीमिदमस्माकमावासः संवत्तः । अलक्ष्मि । खलति कालरात्रि । महानिद्रे । पिङ्गलाक्षि । अभ्यन्तरं प्रविष्य स्वजातिसदृशी क्रीडा क्रियताम् । < < < <

परिष्वजामि गाढ़ं त्वां नित्याधर्मपरायणम्

प्राप्नोमि मुनिशापस्त्वामचिरान्नाशमेष्यसि। [14]

उपरोक्त श्लोक में शाप और राज्यश्री आदि अमूर्त्त तत्त्वों का पात्र रूप में उपस्थित होना प्रतीक शैली का सफल नाटकीय प्रयोग है। सबसे विचित्र बात यह है कि संस्कृत के प्रथम नाटककार के नाटक में प्रतीकात्मक शैली के नाटकों का बीजारोपण होने लगता है लेकिन फिर भी यह बीज केवल बीज ही रह जाता है। यह प्रतीकात्मक शैली के नाटकों का प्रस्फुटित रूप नहीं है। 30 - 40 पात्रों की सूची में एक, दो, प्रतीक पात्र वह भी गौण पात्र और चार छह वाक्य मात्र का संवाद करके ही नाटक को प्रतीकात्मक नाटक कहे जाने में समर्थ नहीं बना सकते, लेकिन फिर भी प्रतीकात्मक पात्रों की कल्पना, रङ्गमंच पर उनकी अवतारणा ओर उनका संवादात्मक भूमिका का निर्वाह करना नाटकों की परम्परा के उद्भव का मार्ग खोलता है। यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि शाप एवं राज्यश्री शुद्ध भावात्मक पात्र न होने पर भी विष्णु के अस्त्रों और वाहन की भाँति दिव्य तत्व नहीं हैं। इससे

---

14. बालचरितम् , द्वितीय अंक, पृष्ठ 37

स्पष्ट हो जाता है कि इनका मूर्तत्व बहुत कुछ अंशों में कवि द्वारा कल्पित किया गया है।

'अभिज्ञानशाकुन्तल' में प्रतीकात्मकता

अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक के प्रणेता महान विद्वान कालिदास हैं। उन्होंने अपने नाटकों में भावतातत्विक प्रतीक पात्रों का प्रयोग नहीं किया है। 'शाकुन्तलम्' के चौथे अंक में प्रतीकात्मकता की कुछ झलक अवश्य मिलती है । जब शकुन्तला की विदाई की तैयारी होती है तो उस समय वन वृक्षों में चन्द्रमा सदृश शुभ्र रेशमी वस्त्र, किसी ने लाक्षारस और किसी ने कोमल किसलय रूपी वनदेवी के करतलों के द्वारा आभूषण प्रदान किए हैं ।[15]

प्रियम्बदा के अनुसार वृक्षों की यह अभ्युपत्ति शकुन्तला की भावी राजलक्ष्मी की सूचक है। किन्तु न तो वृक्ष अमूर्त हैं कि उनका मूर्तीकरण हुआ है तथा न ही वे कुछ मानवोचित कार्य करते हैं जैसे बोलना, चलना, प्रदान करना आदि। वृक्षों से जो वस्तुएं मिलती हैं वे मौके से मिल गई। कवि ने इसी को शुभ शकुन समझा और

---

15. क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरूणा माङ्गल्यमाविष्कृतं

    निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभों लाक्षारसः केनचित् ।

    अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै ।

    र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः ॥

    अभिज्ञानशाकुन्तलम् - अंक 4, श्लोक 5

इसी में उसने वनस्पतिकृत सेवा की कल्पना की है। वृक्षों में मानवीयकरण नहीं कल्पित किया गया। शकुन्तला की विदाई के समय जब वह वन वृक्षों से अनुमति लेकर चलना चाहती है तब वन वृक्ष कोकिल के शब्दों में उसे अनुमति देते हैं। उसके बाद आकाशवाणी के रूप में वन देवियों का आर्शीवाद शकुन्तला को मिलता है। यहाँ पर कोकिल का बोलना एक संयोग है। जबकि आकाशवाणी दिव्य व्यापार है। इसमें प्रतीकात्मकता बिल्कुल नहीं है। शकुन्तला के वियोग में लताओं का पीले पत्ते के रूप में अश्रु बहाना भी वनस्पति सुलभ व्यवहार ही है। इस तरह हम देखते हैं कि कालीदास के नाटकों में अमूर्तो के मूर्तीकरण या भावतत्वों के मानवीकरण रूप में कोई भी प्रतीकात्मकता नहीं है।

अश्वघोष कृत प्रथम प्रतीक नाटक

महाकवि अश्वघोष राजा कनिष्क के समकालीन हैं । इसलिए उनका समय ईसा की प्रथम शताब्दी माना गया है। अश्वघोष को बौद्ध दार्शनिक भी हम कह सकते हैं। इन्होंने महायान श्रद्धोपाद, बज्रसूची, गण्डीस्तोत्रगाथा एवं सूत्रालङ्कार नामक दार्शनिक ग्रन्थ की रचना की। यद्यपि प्रो0 लूडर्स के अनुसार अश्वघोष ने सूत्रालङ्कार की रचना नहीं की बल्कि इसकी रचना कुमारलात ने की ।[16] डा0 राघवन ने विविधसुत्रानुगत सूत्रों से इनके उन्नीस ग्रन्थ बताए हैं।[17] बुद्धचरित और सौन्दरनन्द अश्वघोष के महाकाव्य हैं। प्रसिद्ध विद्वान सिलवांलेवी के मतानुसार

---

16. महाकति अश्वघोष - डा0 हरिदत्त शास्त्री पृ0 45

17. महाकवि अश्वघोष - डा0 हरिदत्त शास्त्री पृ0 45

अश्वघोष सम्भवतः एक गेय नाटक के भी लेखक हैं जिसमें राष्ट्रपाल के बारे में वर्णन किया गया है।[18]

सन 1911 ई0 में मध्य एशिया के तुरफान नामक स्थान से प्राचीनकाल के ताम्रपत्र पर अंकित तीन बौद्धनाटकों की खण्डित पाण्डुलिपियों की एच0 लूडर्स ने खोज की।[19] इन तीनों पाण्डुलिपियों में एक का कर्तृत्त्व तो निश्चत हैं क्योंकि उसके अंतिम अंक की पुष्पिका सुरक्षित है। इसमें कहा गया है कि ''शारिपुत्र प्रकरणे नवमोऽङ्कः। सुवर्णाक्षी पुत्रस्य भदन्ताश्वघोषस्य कृतिश्शारद्वतीपुत्रप्रकरणं समाप्तम्'' ।

प्रस्तुत नाटक में शारिपुत्र एवं मौदगल्यायन की बौद्ध धर्म में दीक्षित होने की कहानी का वर्णन किया गया है। इसमें एक पद्य बुद्धचरित से पूर्ण रूप से लिया गया है एवं सूत्रालङ्कार में इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ का दो बार निर्देश किया गया है । नाट्यशास्त्र की परिभाषा के अनुसार यह रचना प्रकरण है। भरतवाक्य के नायक कृत न होने और 'मृच्छकटिक' की भाँति अंङ्कों का नाम न रखने के अतिरिक्त और हर प्रकार से यह प्रकरण प्राचीन शास्त्रीय प्रकरण नाटक पद्धति के अनुसार ही है। यहां पर स्पष्ट रूप में दिखाई पड़ता है कि इस नाटक में कोई अमूर्त पात्र मूर्त रूप में प्रयुक्त नहीं हुआ है। अतः यह नाटक प्रतीक नहीं है। न तो इसमें लेशमात्र प्रतीकात्मकता भी किसी अंश में दिखाई पड़ती है। कुछ विद्वानों [20] ने इस नाटक में

---

18. महाकवि अश्वघोष – डा0 हरिदत्त शास्त्री पृ0 45

19. संस्कृत नाटक – ए वी कीथ पृ0 72

20. (क) महाकवि अश्वघोष – डा0 हरिदत्त शास्त्री पृ0 93

बुद्धि कृति, धृति आदि पात्रों का समावेश स्वीकार किया है। जबकि ग्रन्थ के अध्ययन करने से इस भ्रान्त धारणा का निराकरण होता है। जबकि वास्तविकता यह है कि शारीपुत्र प्रकरण के अलावा जिन दो नाटकों की खण्डित पाण्डुलिपियाँ लूडर्स के द्वारा इसी के साथ उपलब्ध की गई हैं उनमें से किसी प्रतीकात्मक नाटक का अंश है । और तीसरा मागधवती नाम की गणिका, कुमुदगन्ध नाम का विदूषक एवं सोमदत्त नायक विषयक एक सामान्य परम्परा का नाटक था। मौद्गल्यायन, शारिपुत्र एवं धनंजय आदि भी इसके पात्र हैं। यह नाटक खण्ड सामान्य नाटक परम्परा की रचना का एक अंश है। इस नाटक में कोई प्रतीकात्मकता नहीं हैं ।

इस तरह से इन तीन नाटकों में से दूसरी रचना के पात्र ही प्रतीकात्मक हैं। यही हमारे अध्ययन का विषय है। प्रस्तुत नाट्यांश बहुत ही संक्षिप्त एवं केवल एक पृष्ठ का है । बहुत ही त्रुटित अंश के रूप में यह लूडर्स महोदय को मिला । यह अंश लूडर्स के BRUCHSTVCKE BUDDISITSCHER DRAMEN के 66वें पृष्ठ पर 1911 में बर्लिन से प्रकाशित हुआ है। देवनागरी लिपि में इसका अक्षुण्ण रूप निम्नलिखित रूप में दिखाई पड़ता है।

1. —यू भवनिवर्त्तकेषु क्लेशेषु न किंचिद् अस्तिप्प्रहातव्यं

यस्य नित्यम् अनित्यं (—) व (ा) न क ( ) च (ि) द् अस्त (ि) बोद्धव्य (—) — त0 म्0 य्0 न्0 क्ष्0 स् .... (म्) (य) ऊ ख्0 र0 3 ....(र्) ज्0 (य्) स्य्0 (ध्0) व्0 (स्) त्0

(ख) यतिराज विजयनाटकम् ति कु0वे0न0 सुदर्शनाचार्य प्रस्ताावना पृ0 3

2. .... येनावासम् परमममृतम् दुर्लभमृतम् मनोबुद्धिस्तस्मिन्नहमभिरमें शन्तिपरमें —धृति—अस्ति तत् मत्प्रभावपरिगृहीत पुरूषसंज्ञकम् तेजः प्रादुर्भुत (म)

3. .... (द) ा नी .... कु0 .... बुद्धिः — तथा तत् अपिच — नित्यं स सुप्त (इ) व यस्य न बुद्धिरस्ति नित्यं स मत्त इव यो धृतिविप्रहीण .... स च य (स्) यु0 नु0 कु0

पृष्ठ भाग

1. .... ति (ठ्) यस् (यु) ा कीर्तिः -

क्व पुनरिदानीं पुरूषविग्रहो धर्मः सम्प्रति विहरति - .

बुद्धि :- स्वाधीनायामृद्धो वव पुनर्नविह ....

.... व व्योम्नि याति व्र ....

2. .... स (ङ्) गु0 (स्) तु0 (यु) .... द ....

गाम् प्रविशति बहुधा मूर्तिं विभ (जाति) खे वर्षत्यम्बुधोरां

प्रविशति बहुधा मूर्तिं विभ (जाति) खे वर्षत्यम्बुधोरां ज्वलति

च युगपत् सान्ध्यम्बुद इव स्वच्छन्दात् = पर्व ....(व्) रजति

च वि (धिव) (द्) = ध ....(म्) मु0 (़) = चु0 (च)

3. .... (ङ्) .... गोचर :- धृति :-

तेन हि सर्व्वा येव तावदेवं वासवृक्षीकुर्मः हि स महर्षिर्मगधपुरस्योपवने

सम्प्रति — सोर्ण्णव्ध (़) स् = तमिमृदुजालपाणिपा (द)

उपर्युक्त विवरण केवल एक पृष्ठ का है । जिसमें ऊपर एवं नीचे दोनों ओर लिखा है । इसमें बुद्धि एवं धृति परस्पर वार्ता करती है। धृति का कहना है कि मेरे प्रभाव से युक्त पुरूष संज्ञक तेज उत्पन्न हो गया है । इस सूक्ष्म अंश में भी कई शब्द एवं वाक्य पाण्डुलिपि के जीर्ण एवं गलित होने के कारण लुप्त हो गए हैं । इसलिए कोई वाक्य ठीक प्रकार से पूरा नहीं हो पाता । फिर भी जोड़ तोड़ कर यह धृति, बुद्धि, कीर्त्ति के यत्किंचित कथन प्रतीत होते हैं। घृति के कथन के बाद बुद्धि का यह वक्तव्य पढ़ने में आता है कि फिर भी वह नित्य ही सोया हुआ है । जिसके बुद्धि नहीं है और वह नित्य ही मत्त सदृश हैं जो धृति से शून्य है । इसके बाद प्राप्त संलाप में कीर्त्ति का रहना है कि - पुरूष शरीर धारी धर्म इस समय कहाँ भ्रमण कर रहे हैं। बुद्धि इसका जवाब देती है कि सब ऋद्धियों एवं सिद्धियों को अधीन कर लेने से वह कहां नहीं विचरण कर सकते ? वे पक्षियों की भाँति आकाश में भी विचरण करते हैं । तत्पश्चात् उन्हीं सिद्धियों का वर्णन है कि वह पुरूष शरीर धारी धर्म अपने शरीर को कई रूपों में विभाजित कर देते हैं और अपनी इच्छा से आकाश में जलधारा की वर्षा करते हैं और सांयकालिक मेघों के समान जाज्वल्यमान भी रहते हैं। इसके आगे त्रुटितांशो के बाद धृति कहती है — तो फिर हम लोग सभी उनको अपने निवास का वृक्ष बनावें अर्थात् उसमें निवास करें। वे महर्षि अर्थात् पुरूष शरीरधारी धर्म (कदाचित् भगवान् बुद्ध) मगधपुर के उपवन में इस समय उपस्थित हैं। इसके आगे की प्रति पूर्णरूप से खण्डित है । इसमें केवल दो

पद मिलते हैं । .... स ऊर्णभूः या स्वर्णभूः एवं 'तमिमृदुजालपाणिपादः' जो कदाचित् उनके बैठने की मुद्रा के संबंध में उनके विशेषण हैं । हालांकि समुपलब्ध हुए इतने छोटे अंश से न तो नाटक की कथावस्तु के बारे में कोई विशेष ज्ञान होता है न उसमें अभिव्यञ्जित रस के बारे में कोई जानकारी होती है । इसके अतिरिक्त न तो सभी पात्रों से परिचय ही प्राप्त होता है, न नाटक के अन्य किसी भी उपादान के बारे में कोई जानकारी प्राप्त होती है। लेकिन फिर भी केवल इन तीन पात्रों – धृति, बुद्धि एवं कीर्त्ति के ज्ञान हो जाने से और उनके व्यवहार की अथवा सम्भाषण की प्रणाली से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि यह एक प्रतीक नाटक रहा होगा । जिसमें अमूर्त भावात्मक पात्र मूर्तिमान मानव पात्रों की तरह रंगमंच पर पदापर्ण करते हैं आपस में वार्ता करते हैं और कथानक अपनी नैसर्गिक गति से आगे बढ़ता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि जितना अंश सुलभ होता है उससे ही निष्कर्ष निकलता है कि इसमें यथार्थ पात्र मानव या दिव्य कोई भी रंगमंच पर नहीं आते । जिस पुरूष विग्रह धारी धर्म की ओर संकेत करते हैं वे भले ही मगधपुर के उपवन में निवास करने वाले गौतम बुद्ध ही क्यों न हों, किन्तु इतने मात्र से यह स्पष्ट नहीं होता कि इन तीनो पात्रों का संलाप दिखाया गया होगा। क्योंकि कृति की योजना उनको वास वृक्ष बनाने की है । उनसे वार्ता करने या उपदेश ग्रहण करने की नहीं । वासवृक्ष बनाने का तात्पर्य यह है कि उनमें समाविष्ट हो जाने या उसमें निवास करने से हैं । इस तरह यह नाटक शुद्ध रूप में प्रतीकात्मक रहा होगा। क्योंकि इसमें प्रतीक पात्रों से वार्ता करते हुए बताया गया है ।

यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि कीर्त्ति, धृति इत्यादि पात्र भाष के बालचरितम् में आए हुए शाप एवं राज्यश्री की भांति दिव्य शक्ति या सिद्धिजन्य प्रभाव के कारण कई रूप धारण करने वाले नहीं हैं, बल्कि कवि की कल्पना से ही

इनमें मूर्त्तत्व, चेतनत्व एवं मनुष्यत्व प्रतिष्ठापित किया जा सकता है। इसीलिए पूर्ण अंशों में यह नाटक खण्ड एक शुद्ध प्रतीक नाटक की सत्ता को सिद्ध एवं व्यक्त करता है। कीर्त्ति, धृति एवं बुद्धि आदि का स्थान इस नाटक में नगण्य नहीं रहा होगा। यह तथ्य उनके नाटक के शुरू में उपस्थित होने और परस्पर होने वाले संस्कृत वार्तालाप से स्पष्ट होता है।

अश्वघोष कृत नाटक का कर्त्तृत्व

अश्वघोष कृत नाटक में कर्त्तृत्व के संदर्भ में कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता है। हालांकि परिपुष्ट कल्पना एवं यथार्थ अनुमानों के आधार पर हम यह निर्णय ले सकते हैं कि यह अश्वघोष की ही कृति है । इस संदर्भ में निम्नलिखित तर्क उपादेय हो सकते हैं ।

1. यह नाटक खण्ड उसी हस्तलेख में मिलता है जिसमें अश्वघोष की अन्य प्रमाणित कृति 'शारिपुत्रप्रकरण' प्राप्त होती हैं ।

2. प्रस्तुत पाण्डुलिपि की सामान्य रूपरेखा वही हे जो शारिपुत्र प्रकरण की है।

3. यह रचना भी भगवान गौतम बुद्ध के गरिमामय व्यक्तित्व के सम्बन्ध में हुई है । अत: यह कृति बौद्ध की अनुयायी की ही हो सकती है ।

4. शारिपुत्र प्रकरण की समसामयिक नाट्य रचना कर सकने वाले किसी अन्य बौद्ध कवि से हम लोग अनभिज्ञ हैं। इसलिए किसी बाधक प्रमाण के अभाव में इस रचना के रचयिता के रूप में अश्वघोष को स्वीकार करने में कोई असंगति नहीं मालूम पड़ती ।

5. इसमें प्रयोग होने वाली भाषा की सरलता, प्राञ्जलता एवं स्पष्ट उक्ति प्रवणता के आधार पर भी यह सिद्ध नहीं होता है कि यह अश्वघोष की रचना नहीं हो सकती।

6. भाषा के अलावा अलङ्कार योजना की दृष्टि से भी अश्वघोष की अन्य प्रमाणित कृतियों से इस रचना का सादृश्य प्रतीत होता है, जैसे कीर्त्ति, पुरूष विग्रहधारी धर्म या गौतमबुद्ध की सिद्धिमत्ता का उल्लेख करते हुए वह यह कहती है।

'खे वर्षन्त्युम्बुधारां ज्वलति च युगपत् सान्ध्यम्बुद श्व—'

इसी प्रकार का चित्रण 'सौन्दरनंद' के तीसरे अंक में उल्लिखित किया गया है।

''युगपत् ज्वलन् ज्वलनात् च जलमेवसृजनंश्चमेघवत् तप्तकनक सदृश प्रभया सब भौ प्रदीप्त इव सन्ध्या घना ।'

उपर्युक्त उदाहरण में न केवल वर्णित चित्र की समानता है बल्कि उनके प्रकाशक शब्दों में भी समानता है। 'युगपत् ज्वलन' एवं 'ज्वलति च युगपत्' का शब्द की समानता एक निर्भान्त सा सादृश की धारणा प्रदान करता है।

7. इस कृति में तीसरा नाटक खण्ड जो प्राप्त होता है वह भी उसी समय की रचना है। यह रचना किसी बौद्ध कवि द्वारा की गई है । शारिपुत्र तथा मोड्गल्यायन पात्रों के सन्निविष्ट होने के कारण अश्वघोष की रचना ही प्रतीत होती है।

8. इस तरह से प्राप्त पाण्डुलिपि में वर्णित प्रथम एवं तृतीय रचनाएं अश्वघोष कृत हैं, तो ये संभावना और बढ़ जाती है कि यह कृति अश्वघोष की ही है। डा० जान्स्टन [21], प्रो० एस० के० डे[22], डा० कीथ[23] तथा प्रो० बलदेव उपाध्याय[24] आदि विद्वान भी इस रचना को अश्वघोष कृत स्वीकार करते हैं। इस प्रकार इस कृति की रचना अश्वघोष कृत शारिपुत्र प्रकरण की रचनाकाल के आसपास ही मानना उचित प्रतीत होता है।

यदि यह नाटक खण्ड पूर्णरूप में सुलभ होता तो पता चलता कि यह पूर्ण रूप से प्रतीक पात्रों के द्वारा ही अभिनीत नाटक था। जैसे कि अन्य नाटकों को देखने से प्रतीत होता है । अनुमान तो यह होता है कि यह पूर्णरूप से प्रतीकात्मक नाटक रहा होगा, क्योंकि इस अंश में बुद्ध का परिचय प्राप्त होता है जो कि अक्सर यही सिद्ध करता है कि यह नाटक का प्रथम अंश है और प्रथम अंश में आए हुए प्रतीक पात्र निश्चित ही मुख्य पात्र होंगे। आगे चलकर यह पात्र गौतम बुद्ध से मिलने के लिए कृत प्रतिज्ञ हैं। इस तरह अमूर्त एवं मूर्त, कल्पित एवं यथार्थ पात्रों का संवाद यदि होता है तो इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि इससे नाटक की प्रतीकात्मकता उसके बाद समाप्त हो जाती है। इसका प्रमुख उदाहरण चैतन्य चन्द्रोदय है । यह नाटक

---

21. बुद्धचरित का अंग्रेजी अनुवाद - भूमिका 20-21

22. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर - एस के डे पृ0 77

23. संस्कृत ड्रामा - कीथ पृ0 230

24. संस्कृत साहित्य का इतिहास - बलदेव उपाध्याय पृ0 205

इस प्रतीक नाटक में भविष्यकालिक प्रतीक नाटकों की दार्शनिकता एवं धार्मिकता का बीज दिखाई पड़ता है। अश्वघोष की अन्य रचनाओं की भाँति इस कृति में भी अङ्गीरस शांत ही रहा होगा, वस्तु की दृष्टिकोण से भी यह नाटक प्रतीक नाटकों का प्रतिनिधि रहा होगा । इस बात का बाधक कोई प्रमाण नहीं है। इसलिए इस रचना को प्रतीक नाट्य परम्परा का प्रथम आर्विभाव मानने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं प्रतीत होती।

अब यहाँ पर एक प्रश्न यह उठता है कि वह कौन सी संभावित सामाजिक एवं साहित्यिक परिस्थितियाँ रही होगी, जिनके परिणामस्वरूप अश्वघोष की लेखनी से इस प्रथम प्रतीक नाटक की रचना हुई । जहाँ तक स्पष्ट है कि अश्वघोष काल में धार्मिकता एवं दार्शनिकता का बोलबाला था। अश्वघोष खुदं बौद्ध धर्म एवं दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान थे। कनिष्क के काल में आयोजित चतुर्थ बौद्ध संगीति जो काश्मीर में हुई थी, इसमें उन्होंने भाग लिया था।[26]

अश्वघोष ने महायान श्रद्धोत्पाद संग्रह एवं सूत्रालंकार जैसे उच्चकोटि के दार्शनिक ग्रन्थों का प्रणयन किया था। इसलिए बौद्ध दर्शन की सूक्ष्म जटिलताओं एवं दुरूहताओं को सुलझाने तथा सरस एवं चित्ताकर्षक माध्यम से बौद्धधर्म की मूर्त कल्पना का सहारा लिया होगा। किसी विषय को स्पष्ट एवं प्रभावशाली बनाने की अदम्य आकांक्षा विधाओं के सुलभ एवं ज्ञात होने पर रोकी नहीं जा सकती । अमूर्त को मूर्त रूप में कल्पित करके व्यवहार चलाने की परम्परा महाभारत काल में ही प्रारम्भ हो चुकी थी। भास ने बालचरित में बीच में शाप इत्यादि अमूर्त पात्रों को ला

---

26. एनशीएंट इण्डिया, आर0 के0 मुकर्जी पृ0 230

दिया था। दिशा खुल चुकी थी। सरणि बन गयी थी। उसका सम्यक् एवं सर्वाङ्गीण उपयोग भर करना था। जिसके फलस्वरूप कवि अश्वघोष की कल्पना मुखर हो उठी होगी और संस्कृत साहित्य के प्रथम प्रतीक नाटक की रचना हो गयी। आज भले ही यह हमें खण्डित रूप में मिलती हो लेकिन संतोष का लाभ तो मिलता ही है। चाहे अनुसंधित्सा को पूर्ण तृप्ति न मिल पाए ।

अश्वघोष के द्वारा खोले गए इस मार्ग को प्रशस्त करने का कार्य किया श्री कृष्ण मिश्र ने। श्री कृष्ण मिश्र का 'प्रबोधचन्द्रोदय' ही वह प्रथम प्रतीक नाटक है जो पूर्ण रूप से समुपलब्ध है। जिसने 11वीं शताब्दी में नाटकों की एक सुप्त धारा को पुनरुज्जीवित किया और जिससे प्रेरित हो कई नाटककारों ने प्रतीक शैली में अपनी सूचनाएं लिखीं।

वस्तुतः श्री कृष्ण मिश्र की रचना को ही प्रतीक नाटकों के उद्‌भव का आधार स्तम्भ मानना चाहिए। अश्वघोष की रचना में तो मात्र बीज का प्रस्फुटन या अङ्कुरन ही हुआ। पल्लवित, पुष्पित एवं फलित करने का श्रेय तो श्री कृष्ण मिश्र को ही जाता है। अतः 'प्रबोधचन्द्रोदय' ही प्रतीक नाटकों की प्रतिनिधि रचना मानी जा सकती है।

चतुर्थ अध्याय

प्रतीक नाटक : विकास क्रम

चतुर्थ अध्याय

प्रतीक नाटक : विकास - क्रम

प्रतीक नाटकों में अमूर्त भावों को मूर्त रूप में वर्णित किया गया है। मनुष्य के हृदयगत भाव तब तक सूक्ष्म ही होते हैं, जब तक उनकी अमूर्तता को मूर्त रूप में प्रकट नहीं किया जाता एवं उनको स्थूल इन्द्रियों के माध्यम से देखा नहीं जा सकता। परन्तु जब उन्हें प्रतीक शैली के माध्यम से मूर्त रूप में प्रस्तुत कर दिया जाता है तो वे ही अमूर्त भाव अद्भुत प्रभाव शक्ति से युक्त सजीव रूप में अनुभूत होने लगते हैं। इस तरह के नाटकों में न केवल श्रद्धा, क्षमा, विवेक इत्यादि अमूर्त भावनाओं को मानव रूप में वर्णित किया गया है बल्कि न्याय, आन्वीक्षिकी आदि शास्त्र यक्ष्मा, विषूची आदि रोग संजीवनी (लता विशेष) आदि औषधियों को भी मानव रूप में वर्णित किया गया है। इस तरह इनमें न केवल अमूर्त्त का मूर्तीकरण किया जाता है बल्कि उन्हें मानव रूप में मूर्तिमान किया जाता है।

संस्कृत में लिखे गये अधिकांश प्रतीक नाटकों की सूची निम्नलिखित है—

1.	अश्वघोष	एक खण्डित प्रतिवाला प्रतीक नाटक
2.	श्री कृष्ण मिश्र	प्रबोध चन्द्रोदयम्
3	यशः पाल	मोहराज पराजयम

4.	कवि कर्णपूर	चैतन्य चन्द्रोदयम्
5.	वेकटनाथ (वेदान्तदेशिक)	संकल्प सूर्योदयम्
6.	गोकुल नाथ	अमृतोदयम्
7.	भूदेव शुक्ल	धर्मविजय नाटकम्
8.	आनन्दराय मखी	विद्यापरिणयम्
9.	आनन्दराय मखी	जीवानन्दनम्
10.	नल्लाध्वरी	जीवन्मुक्ति कल्याणम्
11.	श्री कृष्णदत्त मैथिल	पुरंजनचरितम्
12.	श्री वत्स्य वरदाचार्य	यतिराज विजय नाटकम्
13.	वारिचन्द्र सूरि	ज्ञानसूर्योदय नाटकम्
14.	घनश्याम	प्रचण्डराहूदयम्
15.	नल्लाध्वरी	चित्रवृत्ति कल्याणम्
16.	वैजनाथ	सत्संगविजय नाटकम्
17.	नृसिंह मिश्र	शिव नारायण भाण्जामहोदय नाटिका
18.	शुक्लेश्वर नाथ	प्रबोधोऽयनाटकम्

19.	जातवेद	पूर्ण पुरूषार्थ चन्द्रोदयम्
20.	यशः चन्द्र	मुद्रिट कुमुदचन्द्रम्
21.	रविदास	मिथ्याज्ञानखण्डनम्
22.	जीवादेव	भक्ति वैभव नाटकम्
23.	नरसिंह कवि	अनुमिति परिणयम्
24.	रामानुज कवि	विवेक विजय नाटकम्
25.	सुदर्शनाचार्य	सिद्धान्तभेदी नाटकम्
26.	रत्नखेट श्री निवास	भावनापुरूषोत्तम नाटकम्
27.	सामराज दीक्षित	श्रीदामाचरितम्
28.	चिरंजीवि भट्टाचार्य	विद्वन्म्नोरंजिनी
29.	मल्लारि आराध्य	शिवलिङ्ग सूर्योदयम्
30.	जगन्नाथ शीघ्रकवि	सौभाग्य महोदय नाटकम्
31.	इन्दिरेश कवि	विजय रंजन नाटकम्
32.	अनन्त देव	कृष्ण भक्ति चन्द्रिका नाटक
33.	सुन्दर शास्त्री	स्वात्मप्रकाशनाटकम्
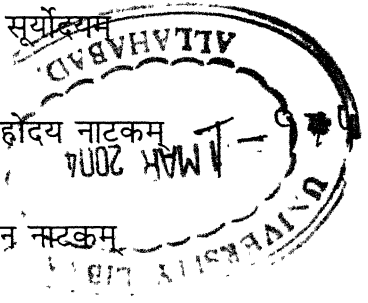
34. कृष्णवलदे दामोदर मिश्र पाखण्डधर्मखण्डन नाटकम्

35. अनन्त पण्डित स्वानुभूति नाटकम्

36. धर्मदेव धर्मोदय नाटकम्

37. शिव विवेकचन्द्रोदय नाटिका

38. अनन्त नारायण सूरि मायाविजयम्

39. पद्मसुन्दर ज्ञान चन्द्रोदयम्

40. त्रिवेणी तत्वमुद्राभद्रोदयम्

इनमें से निम्नलिखित नाटक प्रकाशित हो गये हैं।

1. प्रबोधचन्द्रोदयम्[1] चौखम्भा विद्याभवन, बनारस — 1 ई0 1955

2. चैतन्य चन्द्रोदयम् - निर्णय सागर प्रेस 23, कोलभट लेन, बाम्बे, द्वितीय संस्करण खिस्ताब्द 1917

---

1. (क) दो टीकाओं के साथ निर्णय सागर प्रेस से प्रकाशित, षष्ठावृत्ति, सन 1935

(ख) गोविन्दामृत भगवत्कृतयानाटकाभरणारख्य व्याख्या कृष्ण मिश्र त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज नंबर 122 राजकीय मुद्रण यंत्रालय से प्रकाशित सन् 1936

3. मोहराजपराजयम् - सम्पादक मुनिचतुर्विजय जी, सेन्ट्रल लाइब्रेरी, बड़ौदा 1918 ई0

4. संकल्प सूर्योदयम्-अड्यार पुस्तकालय से प्रकाशित मद्रपुरी, 1948 (प्रभाविलास एवं प्रभावली व्याख्या सहित) दो भाग

5. विद्यापरिणयम् - निर्णय सागर प्रेस 26-28, कोलभटलेन, बाम्बे, द्वितीय संस्करण 1930

6. अमृतोदयनाटकम्[2] निर्णय सागर प्रेस 26-28 कोलभट लेन बाम्बे, द्वितीयावृत्ति 1935

7. पुरंजनचरितम्-चैटर बुकस्टाल आनन्द डब्लू0आर, इण्डिया, प्रथम संस्करण 1955

8. जीवानन्दनम्[3] -मुद्रक टाइमटेबुल प्रेस बनारस, सितम्बर 1955

9. मुनिचतुर्विजयम् गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा 1918

---

2. (क) निर्णय सागर प्रेस , 1897

(ख) (आचार्य रामचन्द्र मिश्र कृत हिन्दी व्याख्या)- प्रकाशित- चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी—1

3. अड्यार से 1947 में प्रकाशित, मद्रास

10. मिथ्याज्ञान विडम्बनम् –हरिशचन्द्र, कविरत्न द्वारा विद्यारत्न यं, कलकत्ता में मुद्रित, सन् 1894

11. ज्ञानसूर्योदयम् –प्रकाशित, गवर्नमेण्ट प्रेस – नागपुर 1926

12. यतिराज विजयनाटकम् – तिरूमाला –तिरूपति देवस्थानम् –तिरूपति 1956

13. चित्तवृत्ति कल्याणम्– सम्पादक मुनि चतुर्विजय जी, सेन्ट्रल लाइब्रेरी बड़ौदा

14. जीवन्मुक्ति कल्याणम् श्री रङ्गम् श्री वाणीविलास प्रेस 1944

15. धर्मविजय नाटकम् –विद्या विलास प्रेस, गोपाल मंदिर लेन, बनारस सिटी, 1930

16. जीव संजीवनी नाटकम् – बंगलौर विश्वविद्यालय सुब्बयय् अण्ड् सन्स मुद्राक्षरशाला मुद्रित 1945

पाण्डुलिपि के रूप में समुपलब्ध होने वाले अप्रकाशित नाटक निम्नलिखित हैं –

1. खण्डित प्रति अश्वघोष कृत

2. मूक्ति परिणय[4]

---

4. तन्जौर न्यू कैटलॉग 4460 एन डब्लू प्राविन्सज कैटलॉग पेज 46

3. प्रचण्डदार ह्वादयम[5]

4. भावनापुरूषोत्तम[6]

5. विवेकविजय नाटक[7]

6. सिद्धान्तभेरीनाटक[8]

7. मिथ्याज्ञानखंडन[9]

8. भक्तिवैभव नाटक [10]

9. प्रबोधोदय नाटक[11]

---

5. तन्जौर न्यू कैटलॉग 4388

6. Theodor Aufretch Cat. Vol. I P. 407. Burnell's, 170, Oppert 3439, Tanjore, New Cat. Nos. 4427-4429.

7. MDSC 12683-4 Adyar 11, p. 30b,

8. Catalogue of Sans. Manuscripts in Mysore and Coorge. P. 286.

9. 10.4200 Bombay Branch. RAS. 1289-90 and many cats.

10. Triennial cats. of the Madras Govt. Ori. MSS. Library 3752.

11. Mm. Harprasad Sastry, Notices, 11 series, vol. III, No. 190, p. 122-24

10. स्वानुभूति नाटक [12]

11. सतसंग विजयनाटक[13]

12. शिवनरायनभाण्जामहोदयनाटिका[14]

13. पूर्णपुरूषार्थचन्द्रोदय [15]

14. पाषण्डधर्मखण्डन [16]

15. भर्तृहरिराज्यत्याग नाटक [17]

16. विवेकचन्द्रोदयनाटिका[18]

---

[12]. Ms. dated sam. 1705. by Anantapandita, S.R. Bhandarkar II Jour. Report of MSS. in Raj. and centr. India, 1904-6, p. 9.

[13]. Cat. of SKT. MSS. in private Lib. of Guj. , Kath., Kacch., Sind and Khandes. By Buhler (II), p. 124, No. 54.

[14]. The Asiatic Society Bengal. 1901 p. 18. and Mm Harprasad Sastry, Report on search for skr. MSS. 1805-1900

[15]. MDSC. 12540-1, MDSC. 14602

[16]. Br. Mu. Prt. Bks. Cat. 1906-28, Column 234.

[17]. Printed Books Catalogue, 1892-1906, Column 315.

[18]. S.R.Bhandarkar, Deccan Coll. Cat. P. 43. No. 31

17. तत्त्वमुद्राभद्रोदय[19]

18. षण्मातनाटक [20]

19. धर्मोदय नाटक[21]

20. चित्सूर्यालोक [22]

निम्नलिखित प्रतीक नाटकों की केवल नाममात्र के लिए सूचना प्राप्त होती है-

1. ज्ञानमुद्रा

2. विजयरंजन नाटकम् .

3. शुद्ध सत्त्वम्

4. शिवलिङ्गसूर्योदय

5. सौभाग्यमहोदयनाटकम्

---

19. Dr. M. Krsnamacharya, Skr. Poetesses, pp. 62-63 Souvenir of the silver Jubilee of the Trivandrum Skr. Series.

20. Peterson's Report, V.P. 262, No. 407

21. Jour. of the Assam Res Society, III 4, p. 119.

22. Vijianagaram, 1894, Printed Books cat. Column 315.

6. ज्ञानचन्द्रोदय

7. मायाविजय

8. शिवभक्तनन्दनाटक

9. विद्वन्मनोरंजिनी

अश्वघोष कृत प्रथम प्रतीक नाटक

अश्वघोष कृत प्रथम प्रतीक नाटक का एक पृष्ठ प्राप्त होता है। प्राप्त हुई प्रति इतनी गल गई कि उसको ठीक प्रकार से पढ़ नहीं सकते। लेकिन जोड़ जोड़ कर उनको किसी प्रकार से पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि इनमें तीन पात्र – धृति, कीर्ति एवं बुद्धि पाये जाते हैं। इससे अनुमान निकलता है कि यही प्रथम प्रतीक नाटक रहा होगा। इसके कथानक रस, अङ्क आदि का पूर्ण रूप से पता नहीं चलता लेकिन इतनी जानकारी अवश्य मिलती है कि यह भगवान बुद्ध के ही जीवन चरित्र से सम्बन्धित नाटक रहा होगा।

प्रतीक नाटक : विकास परम्परा का विच्छेद

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से चिंतन करने पर ज्ञात होता है कि प्रत्येक प्रकार की काव्य रचना की विकास परम्परा में थोड़ा सा क्रम भंग सभी स्थानों में है। लेकिन यहाँ जो एक लम्बा अन्तराल उपलब्ध होता है वह अवश्य विशेष विचार की अपेक्षा रखता है। अश्वघोष का काल प्रथम शताब्दी ईस्वी माना जाता है। इसके बाद कई शताब्दियों तक कोई प्रतीक नाटक नहीं मिलता। बाद में 11वीं शताब्दी के मध्य में श्रीकृष्ण मिश्र द्वारा प्रणीत प्रबोधचन्द्रोदय नाटक मिलता है। अब प्रश्न यह उठता है

कि पहली शताब्दी एवं 11वीं शताब्दी के मध्य कोई प्रतीक नाटक क्यों नहीं लिखा गया? जबकि यह विदित है कि साहित्य विधा जब एक बार जन्म लेती है तो फिर उसके सदृश उसी विधा में कई-कई रचनाएं लिखी जाती हैं। फिर प्रश्न उठता है कि एक बार अश्वघोष द्वारा प्रणीत प्रतीक नाटक के जन्म होने के पश्चात् उसके सदृश हजारों वर्षों तक कोई दूसरा प्रतीक नाटक क्यों नहीं लिखा गया?

इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि पहली एवं 11वीं शताब्दी के मध्य भारत में अनेक राजाओं ने राज्य किया। सभी राजाओं की अपनी अपनी अलग अलग राजनैतिक स्थिति थी, उनका अपना अपना राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक स्तर था। इस काल में भारत वर्ष में कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई। प्रसिद्ध गुप्त साम्राज्य, राजा हर्ष एवं बिम्बसार इसी काल खण्ड में उत्पन्न हुए थे।

गुप्त साम्राज्य उस समय कला एवं संस्कृति का प्रभाव केन्द्र था। गुप्त काल की मूर्त्तियां अपने आप में एक विशिष्ट स्थान रखती हैं। तत्कालीन गुप्त साम्राज्य के दरबार में बड़े बड़े कवि एवं साहित्यकार रहते थे। विशाखदत्त, शूद्रक इत्यादि की उपस्थिति से इस बात की पुष्टि होती है। हर्ष के काल में वाणभट्ट, यशोवर्मा के काल में महाकवि भवभूति एवं माघ जैसे कवि इन्हीं दश शताब्दियों के मध्य उत्पन्न हुए थे। अब प्रश्न यह उठता है कि इतने महान कवि एवं नाटककार के रहते हुए संस्कृत भाषा-साहित्य में प्रतीक नाटक की रचना क्यों नहीं हुई? वस्तुतः नाटकों में प्रतीकात्मकता का पूर्ण विनियोग एक बौद्ध दार्शनिक के द्वारा किया गया था। कदाचित् वैदिक अनुयायी कवियों एवं लेखकों ने इसे बौद्ध प्रक्रिया जानकर अपनी कलाकृतियों में अस्वीकृत कर दिया हो । बाद में पुनरुज्जीवित हुई इस शैली से यह स्पष्ट होता है

कि इस साहित्यिक विधा का विनियोग जटिल दार्शनिक तत्वों के प्रचार के लिये किया गया है। इस बीच की दश शताब्दियों में कवियों एवं लेखकों का यह उद्देश्य ही न रहा हो कि दार्शनिक तत्त्वों का काव्य माध्यम से प्रकाशन किया जाए। इस बात की सम्भावना अधिक है कि यह रचना अश्वघोष के द्वारा लब्धजन्म होकर भी अपनी गौण साहित्यिकता के कारण संस्कृत विद्वानों में प्रसिद्ध न हो पाई हो और एक प्रकार से यह विधा अज्ञात रही हो। अतः इस शैली में अन्य कृतियों की रचना ही न हुई हो। या तो यह हो सकता है कि यह शैली ज्ञात होने पर भी लेखकों या कवियों के मध्य रूचिहीन हो इसलिए इस शैली में श्री कृष्ण मिश्र के पहले तक किसी रचना का प्रणयन ही न हुआ हो। इस एक हजार वर्ष में लिखे गये अनेक नाटक लुप्त हैं। जब तक वे नाटक उपलब्ध नहीं हो जाते तब तक प्रतीक नाट्य परम्परा के सम्बन्ध में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता।

प्रबोधचन्द्रोदयम् नाटकम् : एक परिचय

श्री कृष्ण मिश्र का काल -

प्रतीक नाटक की परम्परा अश्वघोष से प्रारम्भ होकर श्री कृष्ण मिश्र के प्रबोधचन्द्रोदयम् नामक नाटक ग्रन्थ तक आती हैं । प्रबोध चन्द्रोदय नाटक की प्रस्तावना में श्री कृष्ण मिश्र ने उस राजा का वर्णन किया है, जिसकी सभा में नाटक का अभिनय किया गया था। इसके आधार पर लेखक का समय आसानी से हम जान सकते हैं। राजा कीर्त्ति वर्मा का, उसके सहायक गोपाल का एवं उसके शत्रु चेदिपति कर्ण का इसमें उल्लेख मिलता है। इसमें वर्णन किया गया है कि कीर्तिवर्मा का राज्य राजा कर्ण के द्वारा छीन लिया गया था। उसे ही गोपाल ने अपने पराक्रम से जीता एवं कीर्ति वर्मा को फिर राजा के पद पर अभिषिक्त किया। 'येन भूयोऽभ्यषेचि'[23] के भूयः पद से कीर्ति वर्मा के पुनः अभिषिक्त होने की एवम् 'अभ्यषेचि' इस भूतकालीन क्रिया से नाटक निर्माण के पूर्व ही उसके अभिषेक का ज्ञान होता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि कीर्त्तिवर्मा के नए राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में ही गोपाल की आज्ञा से इस नाटक का प्रणयन एवं अभिनय हुआ होगा।[24] प्रबोधचन्द्रोदयम् में एक स्थान पर उल्लेख मिलता है कि गोपाल ने 1042 ईस्वी में चेदिराजाकर्ण द्वारा पराजित कीर्त्तिवर्मा को उसका राज्य लौटा दिया था। इस तरह कीर्त्तिवर्मा के शत्रु कर्ण के राज्य का प्रारम्भ

---

23. प्रबोध चन्द्रोदय - अङ्क 1, पृ0 8

24. आदिष्टोऽस्मि सकलसामन्तचक्रचूणामणि .... श्रीमतागोपालेन ।

प्रबोधचन्द्रोदय, अंङ्क 1 पृ0 4-5

काल 1042 ई0 , विजय काल 1042 से 1059 ई0 एवं पराजय काल 1060 से 1064 ई0 तथा राज्यवसान काल 1072 से लेकर 1073 ई0 तक था। शत्रु कर्ण के राज्य के इस प्रमाणिक विवरण के आधार पर कीर्त्तिवर्मा के राज्यकाल का प्रारम्भ 1050 ई0 माना जा सकता है। 1090 एवं 1098 के उपलब्ध शिलालेखों द्वारा कीर्त्तिवर्मा के राज्यारोहण की अंतिम सीमा 1100 ई0 सिद्ध होती है।[25]

इस तरह कीर्त्ति वर्मा को अपने राज्यकाल (1050-1100 ई0) में 1065 ई0 में विजय प्राप्त हुई होगी और इस विजय के उपलक्ष्य में प्रबोधचन्द्रोदय नाटक का अभिनय हुआ होगा। इसी अभिनय काल से प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के रचयिता श्री कृष्ण मिश्र का समय ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य सिद्ध होता है। यह सबसे प्रसिद्ध प्रतीक नाटक है, इस नाटक में छह अंक दिखाई पड़ते हैं।

श्री कृष्ण मिश्र का निवास -

श्री कृष्ण मिश्र के निवास के विषय में अधिकांश लोगों का विश्वास है कि वे बिहार के ही थे क्योंकि उन्होंने अपनी कृति में द्वारिका, मथुरा आदि को छोड़कर 'मन्दार' बिहार स्थित तीर्थ का सादर उल्लेख किया है। साथ ही गौड़ों की

---

25. (क) एनुअल रिपोर्ट ऑफ दि आर्केलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया, पृ0 93 कालिन्जर के नीलकण्ठ मन्दिर में उत्कीर्ण 20 पंक्तियों का एक शिलालेख प्राप्त होता है जिसमें एक से लेकर सात पंक्तियों तक कीर्त्तिवर्मा का स्पष्ट उल्लेख मिलता है यह शिलालेख 1090 ई0 का है।

(ख) कीर्त्ति वर्मा से सम्बन्धित एक दूसरा शिला लेख देवगढ़ में प्राप्त हुआ है जिसका काल 1098 ई0 है। इसकी सूचना इण्डियन एन्टीक्वेरी वाल्यूम xviii पृ0 238 से प्राप्त हुई।

दाम्भिकता का सरस उपहास प्रस्तुत किया है। गौड़ों से इस तरह का परिचय उनके बिहारी होने की पुष्टि करता है।

प्रबोधचन्द्रोदय नाटक की पात्र तालिका निम्नलिखित है:-

पात्रों की तालिका

नायक के पक्ष में

1.	कथानायक	—	विवेक
2.	विवेक पत्नी	—	मति
3.	विवेक साथी	—	संतोष
4.	विवेक भृत्य	—	वस्तु विचार
5.	उपनिषद् पति	—	पुरूष
6.	उपनिषद् से उत्पन्न पुत्र	—	प्रबोधोदय
7.	शान्ति की माता	—	श्रद्धा
8.	शान्ति की सखी	—	करूणा
9.	श्रद्धा की सखी	—	मैत्री
10.	मन से उत्पन्न	—	(1) वैराग्य (2) निदिध्यासन (3)संकल्प

11. विवेक भगिनी — शान्ति

12. वेदान्त विद्या — उपनिषद्

13. विवेक दासी — क्षमा

14. विष्णुभक्ति की सखी — सरस्वती

प्रतिनायक के पक्ष में

1. प्रतिनायक — महामोह

2. मोहपत्नी — मिथ्यादृष्टि

3. मोह का मित्र — चार्वाक

4. मोह के अमात्य — काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, अहंकार

5. काम की पत्नी — रति

6. क्रोध की पत्नी — हिंसा

7. लोभ की पत्नी — तृष्णा

8. मिथ्या दृष्टि की सखी — विभ्रमावती

9. बौद्ध जैन आदि मत प्रवर्तक — (1) दिगम्बर (2) भिक्षु (3)कापालिक

अन्य सामान्य पात्र

1. सूत्रधार
2. नटी
3. पारिपार्श्विक
4. दौवारिक
5. पुरूष
6. शिष्य
7. वटु
8. प्रतीहारी

कथा वस्तु

प्रथम अङ्क -

पहले अंक में मन की प्रवृत्ति एवं निवृत्ति नामक दो पत्नियों से उत्पन्न मोह एवं विवेक नामक दोनो पुत्रों में आपस में विरोध हो जाता है। मोह के पक्ष में काम, क्रोध, हिंसा आदि हैं तथा विवेक की तरफ क्षमा, संतोष, शान्ति एवं श्रद्धा इत्यादि है। काम एवं रति दोनों रंगमंच पर प्रवेश करते हैं और दोनों का आपस में वार्तालाप होता है । काम से रति यह कहती है कि विवेक जो उसका प्रतिपक्षी है, उसके

लिए समस्या बन गया है। इसके जवाब में काम रति से कहता है कि स्त्री होने के कारण तुम डर रही हो। मेरे समक्ष विवेक की क्या स्थिति है। काम को पूर्णतया विश्वास है कि उसकी विजय सुनिश्चित है लेकिन उसको उसकी भविष्यवाणी से खतरा है। जिसके द्वारा विवेक एवं उपनिषद् के सम्पर्क से विद्या की उत्पत्ति होगी। लेकिन काम रति को आश्वासन देते हुए यह भी कहता है कि विद्या की उत्पत्ति नहीं हो सकती क्योंकि उपनिषद् एवं विवेक एक दूसरे से वियुक्त हैं। फिर भी रति के यह पूछने पर कि विद्या उत्पन्न होने पर विवेक का भी संहार कर देगी? इस पर काम का उत्तर नकारात्मक नहीं रहा । उधर विवेक अपनी पत्नी मति से कहता है कि प्रिये ! देखा तुमने! यह काम अपने को पुण्यात्मा कहता है और हम लोगों को पापी कहता है जबकि नित्य शुद्ध बुद्ध परमात्मा को बंधन में रखने के कारण खुद आप पापी है। इस पर मति विवेक से यह पूछती है कि जो सच्चिदानन्द पुरुष है वह किस प्रकार इन लोगों से आबद्ध हो जाता है । विवेक ने बताया कि चालाक व्यक्ति भी स्त्रियों द्वारा ठग लिया जाता है। पुरूष भी माया के द्वारा बंधन में ग्रस्त हो जाता है फिर विवेक से मति प्रश्न करती है कि आखिर पुरूष का उद्धार कैसे हो सकता है? इस प्रश्न के जवाब में विवेक कहता है कि उपनिषद् के साथ उसका सम्बन्ध होने पर प्रबोध की उत्पत्ति होगी और उपनिषद् शान्ति के मनाने एवं तुम्हारे द्वारा ईर्ष्यारहित होने पर ही मुझसे मिल सकती है।

द्वितीय अङ्क—

द्वितीय अंक में रङ्गमंच पर दम्भ का प्रवेश होता है और वह कहता है कि महाराज मोह ने आदेश दिया है कि तुम लोग इस प्रकार प्रयास करो जिससे हमारा कुल नष्ट न हो क्योंकि विवेक ने 'प्रबोधोदय' की प्रतिज्ञा कर रखी है और प्रबोध की

उत्पत्ति होने पर हमारा नाश निश्चित हो जायेगा । इसलिए मैं पृथ्वी के सबसे बड़े पवित्र स्थान पर अधिकार करता हूँ । अहङ्कार (दम्भ का पिता) भी काशी पहुँचता है और वहां के सभी लोगों को मूर्ख कहता है। अहङ्कार के सभी सम्बन्धी यहाँ ही मिल जाते हैं वह सम्बन्धियों से मिल कर खुश हो जाता है। अहङ्कार ने कुशल समाचार पूछते हुये मोह के ऊपर विवेक के द्वारा उपस्थित भय के बारे में पूछा। दम्भ ने स्पष्ट किया कि महाराज मोह इन्द्रलोक से काशी को ही राजधानी बनाकर आ रहे हैं। अहंकार के पूछने पर भी कि काशी को महाराज ने राजधानी बनाना क्यों चाहा? दम्भ ने स्पष्ट किया कि विवेक को रोकने के लिए ऐसा किया गया है। चार्वाक महामोह की सहायता करता है। वह एक अशुभ समाचार लाता है कि धर्म ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया है । कलि के द्वारा प्रचार के रोक दिये जाने पर, विष्णु भक्ति नामक योगिनी का प्रभाव इतना बढ़ गया कि उसकी तरफ कोई देख भी नहीं सकता। इसी समय मद एवं मान का पत्र लेकर एक पुरुष आता है और यह समाचार देता है कि उपनिषद् विवेक से फिर मिल जाने को सोचती है ओर शान्ति अपनी माता श्रद्धा के साथ इन दोनों का मेल कराने का प्रयास कर रही हैं। महामोह श्रद्धा को जेल भिजवा देता है और मिथ्यादृष्टि को आज्ञा देता है कि श्रद्धा एवं उपनिषद् एक न होने पावें।

तृतीय अङ्क —

तृतीय अंक में शान्ति तथा उसकी सहेली करुणा का प्रवेश होता है। शान्ति अपनी माता श्रद्धा के वियोग में रोती है एवं शोकग्रस्त है। करुणा उसे सांत्वना देती है कि सात्विकी श्रद्धा की दुर्गति कभी नहीं हो सकती। वह दिगम्बर जैनधर्म, बौद्ध धर्म दर्शन तथा सोम सिद्धान्त में श्रद्धा को खोजती है लेकिन वहाँ तामसी श्रद्धा का दर्शन

होता है । वहाँ पर शान्ति उसके भयावने रूप में अपनी माँ को नहीं देखती। बौद्धमत एवं जैनमत के अनुयायी आपस में संघर्ष करते हैं । सोमसिद्धान्त आता है उसने मदिरा एवं नारी के प्रलोभन से इन दोनों को आकर्षित किया। कापालिकी का भेष धारण करने वाली श्रद्धा ने उन दोनों का आलिंगन करके उन्हें मदिरा पिलाई। नाम, साम्य से शान्ति को यह सन्देह हुआ कि यह हमारी माता तो नहीं हैं किन्तु उसकी सहेली करूणाा ने यह बताया कि तुम्हारी माता श्रद्धा विष्णु भक्ति के पास है । तब उसको संतोष हुआ । क्षपणक के यह पूछने पर कि श्रद्धा विष्णु भक्ति के पास महात्माओं के हृदय में है। तब कापालिकी ने धर्म एवं श्रद्धा को अपनी महाभैरवी विद्या से अपनी ओर आकर्षित करना चाहा।

चतुर्थ अङ्क —

चतुर्थ अंक में मैत्री का प्रवेश होता है। मैत्री, श्रद्धा से कहती है कि मुदिता के द्वारा सुना है कि विष्णु भक्ति ने तुम्हें महाभैरवी के चङ्गुल से बचा रखा है। श्रद्धा भी महाभैरवी वाली सारी घटना बताती है। मैत्री ने भी कहा कि हम चारों बहनें विवेक की सफलता के लिए महात्माओं के हृदय में रहती हैं । मैत्री ने पुनः श्रद्धा से कहा कि तुम जाओं, विवेक से कहो कि काम क्रोध एवं मोह को विजित करने का प्रयास करें। विवेक, वस्तु विचार, क्षमा एवं संतोष को बुलाकर क्रमशः काम, क्रोध एवं लोभ पर विजय प्राप्त करने के लिए कहता है, वे सभी सहचर ऐसा करने के लिए तैयार रहते हैं।

पञ्चम अङ्क —

पांचवें अंक में महामोह के कुल के नाश हो जाने के बाद श्रद्धा इस निर्णय पर पहूँचती है कि आपसी बैर कुल को बर्बाद करने का कारण बनती है । इस अंक में युद्ध की समाप्ति हो गयी है । मोह के सभी सैनिक मर चुके हैं किन्तु मन अपने पुत्रों की वृत्ति से शोक ग्रस्त हैं । मन को सांत्वना एवं वैराग्य की उत्पत्ति हेतु विष्णु भक्ति ने वैय्यासिकी सरस्वती को भेजा है। सरस्वती अनित्य संसार को दिखाकर मन में वैराग्य की उत्पत्ति कराती है। सच्चिदानंद में तल्लीन होकर शांत कराने का पाठ पढ़ाती है । मन भी निवृत्त रूप अपनी दूसरी पत्नी के साथ वानप्रस्थ आश्रम में शेष दिन व्यतीत करने का फैसला करता है।

षष्ठ अङ्क —

छठे अंक में शान्ति ने श्रद्धा से राजकुल का समाचार पूछा। इस पर श्रद्धा ने यह बताया कि मन का माया से सम्बन्ध विच्छेद हो गया है। अब निवृत्ति मात्र उसकी पत्नी, वैराग्य उसका बेटा, सम दम आदि सहपाठी हैं। महामोह ने अब भी मन को आकर्षित करने के लिये मधुमती को भेजा है। माया भी इस कार्य में सहायता करती है। लेकिन तर्क ने इस चंगुल से मन को बचाया है। अब पुरूष ने उपनिषद् से मिलना चाहा। लेकिन उपनिषद् मान कर बैठी है। इस प्रकार की स्थिति में शान्ति उपनिषद् को पुरूष की विवशता समझाती है। इसके पश्चात उपनिषद् ने अपने पूर्वानुभूत जीवन का सम्पूर्ण तृत्तान्त शान्ति से सुनाया । इसी बीच निदिध्यासन प्रकट हुआ। उसने पुरूष से प्रबोध एवं विद्या की उत्पत्ति को बताया । विवेक के साथ

उपनिषद् , विष्णु भक्ति के पास चली गई । प्रबोधोदय होने से समस्त अज्ञान एवं अंधकार समाप्त हो गया । इस प्रकार पुरुष को मोक्ष मिल गया ।

प्रतीक नाटकों की श्रृंखला

प्रबोधचन्द्रोदय नाटकम् के अतिरिक्त अन्य नाटक निम्नलिखित हैं -

1. मोहराजपराजयम्
2. संकल्प सूर्योदयम्
3. यतिराजविजयम् नाटकम्
4. चैतन्यचन्द्रोदय नाटकम्
5. अमृतोदयम्
6. धर्मविजयनाटकम्
7. जीवानन्दनम्
8. विद्यापरिणयनम्
9. जीवन्मुक्तिकल्याणम्
10. पुरंजनचरितम्
11. जीवसंजीविनीनाटकम्

1. मोहराजपराजयम् (तेरहवीं शताब्दी)

मोहराजपराजयम् प्रतीकात्मक शैली का द्वितीय नाटक है। इसकी रचना जैन कवि यशपाल ने की है।[26] यशपाल चक्रवर्ती अजयपाल की सेवा में सदैव रहे । अजय देव ने कुमार पाल के पश्चात 1229 से 1232 ई0 तक राज्य किया । सबसे पहले यह नाटक कुमारपाल के द्वारा थारापद्र में निर्मित मन्दिर अथवा महावीर विहार में प्रतिमा समारोह के अवसर पर मंचित किया गया ।[27] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक थारापद्र का निवासी रहा होगा । इस तरह नाटक की रचना तेरहवीं सदी में हुई होगी।

इस नाटक में पांच अंक हैं :-

पात्र तालिका

	परिचय	पुरूष पात्र
1.	नाटक प्रयोग प्रबन्धकर	सूत्रधार

---

26. सूत्रधार-अस्त्येव श्री मोढवंशावतंसेन श्री अजयदेव चक्रवर्तिचरणराजीवराजहंसेन...........
परमार्हतेन यश:पाल कविना विनिमितं मोहराजपराजयोनाम नाटकम् -

मोहराजपराजयम् प्रथम अंक, पृ0 3

27. सूत्रधार ....यदथ मरूमण्डलकमला मुखमण्डनर्क्मूरपत्राङ्कुर थारापद्र पुरपरिष्कार श्री कुमारविहार क्रोडालङ्कारश्रीविरजिनेश्वरयात्रामहोत्सवप्रसङ्गसङ्ग ....

मोहरज पराजयम् - प्रथम अङ्क, पृ0 2

2.	प्रधान नायक	राजा कुमार पाल
3.	कुमार पाल का अमात्य	पुण्यकेतु
4.	स्तुतिपाठक	वैतालिक
5.	कुमार पाल प्रणिधि	ज्ञानदर्पण
6.	ज्ञानदर्पण नाम- कुमारपाल-प्रणिधि	योगी
7.	लोकाचार नायक कुमारपाल का सेवक	पुरूष
8.	कर्मविवर नामक कुमारपाल प्रतिहार	प्रतीहार
9.	कुमार पाल-नर्म - सचिव	विदूषक
10.	पुण्यकेतु मंत्रिद्वारा विपक्ष पुरूष गवेषणार्थ नियुक्त धर्मकुंजर नामक राजपुरूष	दाण्डपाशिक
11.	विद्याधराधिराज	पातालकेतु
12.	नगर श्रेष्ठी	कुबेर
13.	कुबेरश्रेष्ठिसखा	वामदेव
14.	नागरिक	वणिज, महत्तर वणिज महाजन

15.	संवरनामक राजशुक	शुक
16.	विवेक नृपति को लाने हेतु पुण्यकेतु के द्वारा भेजा गया कोई पुरूष	व्यवसाय नगर
17.	दो राजपुरूष	पदाति
18.	संसारक नामक मोहराज-लेखाहारक	पुरुष
19.	व्यसन	द्यूत कुमार , जाङ्गलक मद्यशेखर
20.	राजा मोह का अमात्य	पापकेतु
21.	जनमनोवृत्त्याक्रामक विवेकचन्द्र का शत्रु	मोहराज
22.	जनमनोवृत्ति का अधिपति	विवेकचन्द्र
23.	हिंसा-धर्म -प्ररूप-सिद्धान्त मारि के सेवक	कापालिक, रहमाण, घटचटक, नास्तिक हाटपटक, नास्तिक
24.	मोहराज प्रणिधि	कदागम
25.	मोहराज के पुत्र	रागकेसरी, द्वेषगजेन्द्र
26.	मोहराजसखा	मदनदेव

27.	मोहराजकटकाधिपति	कलिकन्दक, पाखण्ड, मिथ्यात्वराशि आदि

स्त्री पात्र तालिका

	परिचय	**स्त्री पात्र**
1.	विवेकचन्द्र की पुत्री तथा कुमार पाल की पत्नी	कृपा सुन्दरी
2.	कुमारपाल प्रणयिनी	राज्यश्री
3.	राज्यश्री की प्रिय सखी	रौद्रता
4.	कुबेरश्रेष्ठि माता	गुण श्री
5.	राज्यश्री लेखहारिका	व्यवस्था
6.	कृपा सुन्दरी की प्रिय सखी	सौमता
7.	अविरतिकलानाम की मोहराज की प्रतिहारी	प्रतिहारी
8.	द्यूतकुमार की भार्या	असत्यकन्दली
9.	कृपासुन्दरी तथा नगरश्री की प्रिय सखियाँ	वनिता एव वनराजी
10.	दोनों बहनें	देशश्री, नगरश्री
11.	कुबेर श्रेष्ठपरिणीताविद्याधर की पुत्री	पातालचन्द्रिका

12. पातालकेतु पत्नी — पातालसुन्दरी

13. कुबेर श्रेष्ठि भार्या — कमलश्री

कथावस्तु

प्रथम अङ्क

प्रथम अंक में ऋषभ, पार्श्व एवं महावीर नामक तीन तीर्थाँङ्करों की तीन पद्यों में स्तुति सर्व प्रथम की गयी है। उसके पश्चात सूत्रधार एवं उसकी पत्नी नटी का प्रस्तुत नाटक एवं उसके लेखक के विषय में कहा गया है। इसके पश्चात् विद्षक के साथ राजकुमार पाल रङ्गमंच पर आते हैँ। मोहराज का वृत्तांत जानने के निमित्त प्रेषित चर ज्ञान दर्पण पदापर्ण करता है । यह जन मनोवृत्ति नामक विवेक चन्द्र की राजधानी पर महामोह के आक्रमण एवं उसकी सफलता की सूचना देती है । वह यह भी बताता है कि विवेक चन्द्र अपनी पत्नी शान्ति तथा पुत्री कृपा सुन्दरी समेत राजधानी छोड़कर चला गया है । इसके साथ वह यह भी समाचार देता है कि वह सच्चरित्र एवं नीति देवी की पुत्री कीर्त्ति मंजरी (कुमारपाल की पत्नी) से भी मिला। उसने चर से मोह से सहायता मांगने के वृत्तान्त को बताया। कीर्त्तिमंजरी ने चर से यह कहा कि मोह से सहायता मांगने में राजा कुमारपाल स्वयं कारण बने हैं जिन्होंने जैन साधु के प्रयास के फलस्वरूप उसको तथा उसके भाई प्रताप को त्याग दिया है । कुमारपाल पर आक्रमण करने की तैयारी मोहराज कर रहा है । मोहराज ने यह प्रतिज्ञा की है कि या तो मैं ही नहीं रहूँगा या कुमार पाल की मेरे

हाथों से मृत्यु होगी। यह समाचार सुनकर कुमारपाल अपने मन में प्रतिज्ञा करता है कि वह मोहराज को उखाड़ फेंकेगा। इसके बाद वैतालिक घोषणा करता है कि उपासना का समय हो गया है इस तरह यह अङ्क समाप्त हो गया।

दूसरे अङ्क में राजा के अमात्य पुण्यकेतु का प्रवेश होता है और उसके द्वारा विवेकचन्द्र का राजा से मिलने का समाचार ज्ञात होता है द्वितीय अङ्क में राजा एवं विदूषक के साथ परम्परा से लुकछिप कर कृपा सुन्दरी तथा उसकी सखी सौमता की बातें सुनना चाहता है, अंत में उनसे बात भी कर लेता है । दोनो की प्रेमभरी बातों को रानी राज्यश्री सुन लेती है ओर वह अपनी सहचरी रौद्रता के साथ बाधारूप में उपस्थित हो जाती है राजा उनसे क्षमा मांगता है लेकिन असफल हो जाता है।

तीसरे अङ्क में पुण्यकेतु उन प्रेमियों की बाधा को बड़ी चालाकी से दूर करने में सफल होता है। वह अपनी एक सेविका को देवी की मूर्त्ति के पीछे बैठा देता है । जिसके पास जाकर रानी अपनी होने वाली सौतन को विरूप कर देने का वरदान मांगने के लिए जाती है। इस देवी को इस सेविका के द्वारा यह उपदेश मिलता है कि कृपासुंदरी का विवाह राजा से होना बहुत आवश्यक है। क्योंकि कृमा सुन्दरी से विवाह करके ही राजा अपने प्रतिपक्षी मोह पर विजय प्राप्त कर लेने में सफल हो सकते हैं। इसके साथ ही रानी को विवेक चन्द्र के पास जाकर उसकी कन्या के बारे में प्रार्थना करनी चाहिए । विवेक चन्द्र के पास उसकी कन्या के विवाह के संदर्भ में प्रार्थना करने रानी राज्यश्री आती है। विवेक चन्द्र भी देवी की आराधना मान लेता है लेकिन वह देवी के सामने दो शर्त रखता है। पहली शर्त यह है कि सातव्यसन निर्वासित कर दिए जाएं, एवं दूसरी शर्त यह है कि लावारिस मृतकों की सम्पत्ति जब्त करने की परम्परा समाप्त की जाए। रानी इस शर्त को मान लेती है । राजा भी

सहमत हो जाता है । इस अङ्क के अंत में वह मृत समझे जाने वाले कुबेर की सम्पत्ति छोड़ देता है।

चौथे अङ्क में देश श्री का रंगमंच पर पदापर्ण होता है । वह अपनी छोटी पुत्री वनराजी की मदद से नगर श्री से मिलती है । नगर श्री एवं देशश्री के द्वारा जैन धर्म के सिद्धान्तों के विषय में कथन, उपकथन कराया गया है। इसके पश्चात् कृपासुन्दरी का प्रवेश होता है । वह मछुआरों एवं आखेटकों से बहुत घबराई हुई है। किन्तु पुण्यकेतु द्वारा नियुक्त किए गये पुलिस अफसर (दाण्डपासिक) से आश्वासन मिलता है। इस अंक में सात व्यसन द्यूत, मास-भक्षण, मद्यपान, मारि (हत्या), चौर्य (चोरी), पारदारिकत्व, एवं वेश्यागमन के निर्वासन रूप वचन का पूर्णतया पालन किया गया है ।

पांचवें अङ्क में विवेकचन्द्र का रंगमंच पर प्रवेश होता है । उसकी सुपुत्री कृपासुन्दरी का विवाह होता है, विवेक चन्द्र इस विवाह के आनन्द का वर्णन करता है, हेमचन्द्र के लोकशास्त्र जो उसका कवच एवं विंशतिवीतरागस्तुति (जो इसको छिपाये रहती है) से सुसज्जित होकर राजा, मोहराज के निवास स्थान के नजदीक आता है । अंत में कुमार पाल एवं मोहराज में खुला संघर्ष होता है। इस संघर्ष में कुमार पाल की जीत होती है। मोहराज, पापकेतु, रागद्वेष अनङ्ग कलिकंदकादि अपने सहयोगियों के साथ इस संघर्ष में मारा जाता है। विवेक चन्द्र को अपना अपहृत राज्य 'जनमनोवृत्ति' वापस मिल जाता है एवं भरतवाक्य से यह अंक समाप्त हो जाता है।

2. संकल्प सूर्योदयम्

संकल्प सूर्योदयम् प्रतीक शैली में लिखा गया तीसरा नाटक है। इसकी रचना महाकवि वेंकटनाथ ने की । ऐसा जान पड़ता है कि कवि ने अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में प्रस्तुत नाटक की रचना की होगी, क्योंकि इस नाटक में जिस तरह की परिमार्जित शैली, प्रौढ़भाषा एवं विचारों में जो गंभीरता पायी जाती है, वैसी शैली की परिपक्वता, भाषा की प्रौढ़ता एवं विचारों का गाम्भीर्य जीवन के प्रारम्भिक समय में उतना सम्भव नहीं है । इसके साथ ही कवि का 'कवितार्किकसिंह' 'वेदान्ताचार्य' आदि उपाधियों को प्राप्त करने का विवरण एवं छात्र जीवन द्वारा अपनी चारों दिशाओं में यश: पताका के फहराये जाने का उल्लेख करना, इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि कवि की यह रचना उसके जीवन के उत्तरार्द्ध की देन है। [28] इसलिए संकल्प सूर्योदयम् को चौदहवीं शताब्दी की कृति मानना पूर्णतया सत्य है। इस प्रकार महाकवि वेंकटनाथ का काल 1269 से 1379 ई0 तक माना जा सकता है।[29]

---

28. ...... श्री रङ्गराजदिव्याज्ञालब्धवेदान्ताचार्यपद: कवितार्किकसिंह इति प्रख्यातगुणसमाख्य: छात्रजननिबद्धजेत्रध्वजप्रसाधितदशदिशासौध: सर्वतंत्रसंकट प्रशमनविकङ्कटमति: श्रीमद्वेंकटनाथो नाम कवि: ।

—संकल्पसूर्योदयम्, प्रस्तावना, पृ0 38

29. भारतीय दर्शन – बलदेव उपाध्याय, पृ0 491

पात्र - तालिका

सामान्य पात्र

1. नाटक प्रबन्ध का प्रयोगकर्ता - सूत्रधार
2. सूत्रधार की स्त्री - नटी
3. दौवारिक
4. चेटि

सत्पक्ष के पात्र :

1. कथानायक — विवेक
2. कथानायिका — सुमति
3. सेनापति — व्यवसाय
4. सारथि — तर्क
5. दूत — दृष्ट प्रत्यय
6. शिल्पी — संस्कार
7. पुरुष पत्नी — बुद्धि
8. भगवद्दासी — विष्णु भक्ति

सतपक्ष के पात्र

9.	सुमति की सखियाँ	—	श्रद्धा,
			विचारणा,
			उपेक्षा,
			मुदिता,
			करूणा,
			मैत्री
10.	देवर्षि	—	नारद ,
			तुम्बरू
11.	वाद	—	शिष्य (वेदान्त देशिक)
12.	सिद्धान्त	—	गुरू (रामानुजाचार्य)
13.	भगवद्दास	—	संकल्प
14.	नि:श्रेयसाधिकारी	—	पुरुष
15.	सुमति –परिजन	—	शान्ति,
			विरक्ति,

तितिक्षा,

जुगुप्सा

सतपक्ष के पात्र

16.	मंत्रीगण	—	शम
			दम
			स्वाध्याय
			तोष
17.	वाद विषय	—	श्री पांचरात्र
18.	वन्दना करने वाले	—	दिव्य वैतालिक
19.	संस्कार का पिता	—	अनुभव
20.	राजधानी	—	श्वेतदीप
21.	आतिवाहिका	—	अर्तिरादि
22.	संकल्प प्रापक	—	तार्क्ष्य
23.	संस्कार के दास	—	सहदृष्टि
			सदृशदृष्टि

असत् पक्ष के पात्र

1.	प्रतिनायक	—	महामोह
2.	प्रतिनायिका	—	दुर्मति
3.	कामसखा	—	बसन्त
4.	काम की पत्नी	—	रति
5.	राजधानी	—	माया
6.	सेनापति	—	काम, क्रोध
7.	सखा	—	भ्रम
8.	मोह के मंत्रीगण	—	मान
			मत्सर
9.	काम योध	—	श्रृंगार
10.	काम परिवार	—	ऋतुस्नातनादि
11.	योध	—	कलि
12.	चारण	—	विघ्न
13.	मोह-पक्षी	—	सांख्य एवं योग

संकल्प सूर्योदयम् की कथावस्तु

इसके प्रथम अङ्क में यह प्रतिपादित किया गया है कि आत्मा को विषयी सुख से कितना भटकना पड़ता है । विष्कम्भक के प्रारम्भ में महामोह के अनुयायी काम, रति एवं वसंत में आपस में विचार विमर्श होता है। शरीररज राग, द्वेष आदि महामोहोपकारी तथा विवेक के अपकारी के रूप में वर्णित किये गये हैं। नित्यनिर्मलानन्द स्वरूप पुरुष अविद्या के संपर्क से संसार बंधन ग्रस्त हो गया है । इस बंधन से मुक्ति केवल विवेक द्वारा ही हो सकती है। इस अङ्क में वर्णित किया गया है ।

इस नाटक के दूसरे अङ्क में सुमति की सखी श्रद्धा एवं विचारणा द्वारा पुरुष को ठगने के निमित्त महामोह के द्वारा किये गये प्रयासों का चित्रण किया गया है। गुरू (रामानुज) एवं शिष्य वेदांत देशिक के वाद विवाद द्वारा अर्हत्, बौद्ध, सांख्य, सौत्रान्त्रिक, योगाचार, वैभाषिक, माध्यमिक, अक्षपाद इत्यादि दर्शनों का उल्लेख किया गया है।

संकल्पसूर्योदयम् के तीसरे अङ्क में विवेक के द्वारा मुक्ति के उपाय का निरूपण करने के लिए पहले रागद्वेष का प्रवेश कराया गया है । रागद्वेष परस्पर पुरुष को बंधनग्रस्त करने का उपाय सोचते हैं। यहॉ पर राग कहता है कि मैं राम को मारीच की तरह पुरूष को वैराग्य से दूर कर दूंगा और तुम (द्वेष) रावण जैसे सीता को चुरा ले गया था, उसी प्रकार विष्णु भक्ति को पुरूष से दूर कर दो।

इस नाटक के चौथे अङ्क में यह वर्णित किया गया है कि समाधि प्रारम्भ करने वाले पुरुष का चित्त पूर्वानुभूत विषय वासनाओं से कलुषित रहता है। और

समाधि में स्थिरता नहीं प्राप्त करता । वैषयिक सुख एवं वैराग्य दोनों के मध्य में वह दोलायमान रहता है एवं उसको नितान्त दयनीय दशा प्राप्त होती है। इस तरह वह अन्य व्यक्तियों द्वारा अपमानित होता है और उन्हें मारने की इच्छा करता है। इस क्रोध की सम्भावना पाकर मात्सर्य सहित राग एवं क्रोध व्यूह बनाकर पुरूष को समाप्त कर देना चाहते हैं। उस समय तितिक्षा, मुदिता आदि विवेक के बल व कवच की सहायता प्राप्त कर कामादिर्व्यूह का भेदन करके समाधि में फिर से स्थिरता लेने का प्रयास करता हैं।

पांचवें अङ्क का नाम 'दम्भादि उपालम्भ' है । इस अङ्क में पुरुष अपनी समांधिनिष्ठता की प्रसिद्धि करना चाहता है। इसी वजह से उसके अंदर अहंकार का उदय होता है। दर्प भी दम्भ की सहायता लेता है। इसकी सिद्धियों से अन्य लोग ठगे जाते हैं । वह विभिन्न प्रकार से अपने त्याग एवं तपस्या का वर्णन करता है। एवं लोगों से धन सामग्री प्राप्त करता है । ऐसे समय में वह असूया युक्त हो जाता है। राम इत्यादि अवतारों की वह निन्दा करता है। अपने को सकलशास्त्र वेत्ता एवं निर्दोष बताते हुये अन्य सभी सिद्धान्तों को वह सदोष बताता है।

इस नाटक के छठवें अंक में यह बताया गया है कि विषकम्भक में ही सभी पुण्य तीर्थों के कलिकाल से प्रदोषित होने के कारण हेयत्व बताकर हृदय गुहा ही योग का उपयुक्त स्थान है, इसमें इस प्रकार का निर्णय दिया जाता है। इसके बाद एक-एक करके पुण्य क्षेत्र तीर्थों की सदोषता का उल्लेख किया जाता है। जैसे गंधमादन, वन आदि संगीत ध्वनि से युक्त होने के कारण चित्त क्षोभक हैं। वाराणसी म्लेच्छप्राय होने

के कारण सदाचार रहित है । श्री रङ्ग क्षेत्रादि भी योगविघ्नों से परिपूर्ण है । अतः कहीं किसी एकान्त प्रदेश में बैठकर हृदय गूहा में निवास करने वाले लक्ष्मी पति का स्मरण करना चाहिए । इस अंक का नाम 'स्थान विशेष संग्रह' है।

सातवें अङ्क का नाम 'शुभाश्रयनिर्धारण' है। इसमें हृदयकमलरूपयोगासन पर भगवान के ध्यान के प्रकार का चित्रण किया गया है । उसके पश्चात् विवेक सुमति एवं व्यवसाय के द्वारा होने वाले दर्शन के बहाने होने वाले भगवान के अवतारों का उल्लेख मिलता है। अंत में निदिध्यासन की मोक्षप्रदता का वर्णन किया गया है, फिर विष्णु के दशों अवतारों की महिमा का उल्लेख है।

आठवें अङ्क का नाम 'मोहादिपराजय' है। व्यूह भेद से पराजित काम इत्यादि, दुर्वासना एवं अभिनिवेश से उत्तेजित होकर स्थिर समाधि वाले पुरुष के चित्त को फिर विषयाभिमुख करने की तैयारी करते हैं । विषयाभिमुख की स्थिति को अनुकूल समझ कर महामोह अपने सैनिकों सहित राजा विवेक पर हमला करता है किन्तु सुवासना, समाध्याभिनिवेश से उपष्टब्ध विवेक को खत्म कर देने का प्रयोग करता है । इसके पश्चात् नारद-तुम्बरू-संवाद के द्वारा महामोह एवं विवेक का युद्ध, मोहविनाश तथा समाधिसम्पादन का सरस रूप में उल लेख किया गया है।

इस नाटक नौवें अङ्क में यह बताया गया है कि अब पुरूष की भक्ति प्रवणता और ज्यादा बढ़ती है लेकिन कर्मनामी अविद्या विनष्ट कामादिक को फिर कुछ कुछ उठाती है । समाधिसिद्धि के लिए भगवान की शरण में जाकर सावधानी से रहना चाहिए, तब जाकर निर्विघ्न समाधि प्राप्त होती है। अब कुछ करणीय अवशिष्ट नहीं बचता । केवल शरीर के नष्ट होने की प्रतीक्षा रहता है।

दसवें अङ्क का नाम 'निःश्रेयसलाभना' है। इस अङ्क में समाधिसिद्ध पुरूष से उपासना के कारण भगवान प्रसन्न होते हैं। अर्चिरादि मार्ग से योगी को परमपद प्राप्त होता है यहाँ पर ब्रहूम सायुज्य नामक मुक्ति को प्राप्त करने वाले पुरूष को निरतिशय ब्रहमानन्द का अनुभव प्राप्त होता है एवं इस नाटक के अंत में कवि ने इस सम्पूर्ण नाटक का समर्पण वासुदेव के समक्ष किया है ।

3. यतिराजविजयनाटकम्

यतिराजविजयनाटकम् 14वीं शताब्दी में प्रतीक शैली में लिखा गया नाटक है इस नाटक के रचयिता वरदाचार्य हैं। श्री वरदाचार्य ने अपना परिचय स्वयं प्रस्तावना में दिया है । भगवान् रामानुज मुनि के पूर्वाश्रम भागिनेय श्रीमद्सुदर्शनाचार्य 'नडादूर अम्माल्' नाम से विख्यात है। इन्होंने श्री भाष्य का प्रवचन किया उनके पौत्र वरदाचार्य से पांचवें थे। उन्हीं वरदाचार्य के नाम में समानता होने के करण इस नाटककार को भी 'अम्माल्' नाम मिला । इस नाटककार के पिता का नाम 'चटिकाशतसुदर्शनाचार्य' एवं उनका निवास स्थान कांची है। इस नाटक के सम्पादक श्री सुदर्शनाचार्य के मतानुसार-नाटककार वरदाचार्य परमहंस परिव्राजकाचार्य आदि वणशठगोपयति जिन्होंने 'अहोबिल' मठ की स्थापना की थी, के आचार्य थे। इसलिए इनका काल चौदहवीं सदी माना जाता है।[30] हालांकि एस एन दास गुप्त एवं एस के डे की पुस्तक 'ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर' में इनका समय 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं 18वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है ।[31] लेकिन ई0 वी0 वीरराघवचार्य ने अपने निबन्ध

---

30. यतिराजविजयनाटकम् - भूमिका, पृ0 33-34

31. ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर एस0 के0 डे पृ0 487

में इनका काल 14वीं शताब्दी ही माना है।[32] जब तक वर्दाचार्य के 17वीं शताब्दी के स्थिति के पोषक एवं 14वीं शताब्दी के स्थिति के बाधक कोई प्रबल प्रमाण न हों तब तक उपर्युक्त साक्ष्य के आधार पर 14वीं शताब्दी इसका रचनाकाल मानना उचित प्रतीत होता है।

पात्र तालिका

	परिचय		पुरुष पात्र
1.	राजा (नायक)	—	वेदमौलि
2.	मूलमंत्री	—	यतिराज
3.	राजा का अनुचर	—	धर्म
4.	राजा का आप्त मित्र	—	यामनमुनि
5.	वैतालिक	—	रङ्गप्रिय
			प्रियरङ्ग
	परिचय	**—**	**पुरुष पात्र**
6.	यतिराज का अंतरङ्ग शिष्य	—	सुदर्शन

---

32. जनरल ऑफ वेनकेटेश्वर ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट भाग 2, पार्ट 1, 1941

7.	श्री सठ परमपूज्यकोपदिव्यसूरि	—	पराङ्गकुश
8.	मंत्री	—	भास्कर
			यादव
9.	मंत्री के सहायक	—	चार्वाक
			सौगत
10.	प्रधान महामंत्री प्रतिपक्षी	—	मायावाद
11.	मायावाद का सहायक	—	शङ्कर
12.	वेदान्त के सहायक	—	इतिहास
			पुराण
13.	राजा वेदान्त का भाई	—	वेदविचार
14.	सेवकगण	—	प्रत्यक्षादिप्रमाण
15.	अनुचर	—	शब्द
16.	योद्धा	—	सुतर्क
17.	सेनापति	—	तन्त्रपाल
18.	विवरणकार	—	संन्यासी

19.	वाचस्पति	—	शुक्लपट
20.	यादव शिष्य	—	वादसिंह

अन्य साधारण पात्र :

प्रस्तावना प्रवर्त्तक पात्र	—	सूत्रधार
		प्रतिहारी
		पारिपार्श्विक

स्त्री पात्र तालिका

1.	पट्टमहिषी	—	सुमति
2.	चामरग्राहिणी	—	सद्विद्या
3.	सुमति की सखी	—	गीता
4.	मोहजननी (वेश्या)	—	मिथ्यादृष्टि
5.	पटरानी की बेटी	—	सुनीति

कथावस्तु

इस नाटक को वेदान्त विलास भी कहते हैं । इसमें भी प्रबोधचन्द्रोदय की तरह छह अङ्क हैं। इसमें नायक वेदमौलि अर्थात वेदान्त एवं नायिका सुमति अर्थात् भगवद्भक्ति हैं।

इस नाटक के पहले अङ्क में नान्दीपाठ होता है। इसमें भगवान कृष्ण एवं भगवान विष्णु की आराधना की गई है। नान्दी के अङ्क में सूत्रधार ग्रन्थकार का परिचय देता है एवं नायक वेदमौलि की विजय की प्रस्तावना होती है।[33] नारद एवं भरत एक विष्कम्भक करते हैं। उसके पश्चात् इस अङ्क में राजा वेदमौलि का पदापर्ण होता है । वह अपने प्रधान मंत्री मायावाद के सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त करता है और कहता है कि मानार्थ तत्त्वहीन मायाजीवी अत्यन्त मृषावादी, सुमति एवं सुनीति का द्वेषी यह महामंत्री मुझको भी वैसा ही किए जा रहा है। लेकिन अन्य किसी नीतिशाली मंत्री के अभाव में इसी मंत्री की मंत्रणा पर चलने का वह संकल्प करता है ।प्रतिहारी आता है और भाष्कर तथा यादव के साथ प्रतीक्षा करते हुए महामात्य की सूचना देता है । प्रतिहारी ने निवेदित किया कि मंत्रशाला में भास्कर एवं यादव आपके इन्तजार में बैठे हुए हैं । राजा चल देता है । राजानुज एवं धर्म आपस में बातचीत करते हैं ।धर्म बताता है कि राजा वेदमौलि, मायावाद के जाल में फंसा हुआ है। रामानुज, धर्म को आश्वस्त करते हैं और सूर्य में साक्षात् विष्णु को

---

33. 'सर्वैर्विलुप्तविषयः .... ।'

यतिराजविजयम् - श्लोक 22

देखते हैं । उसी क्षण अभिजित नाम का मूहूर्त्त लगा हुआ है और यह लोग वेद विचार की दुर्दशा का व्याख्या करते हैं।

इस नाटक के दूसरे अङ्क में चार्वाक एवं सौगत का पदापर्ण होता है सौगत कहता है कि मायावाद मेरा ही स्वरूप है । चार्वाक एवं सौगत कहते हैं कि मेरा विरोध वेद मौलि से है। मायावाद नाम के मंत्री एवं राजा का संलाप होता है । सभी भेदवाद के विरुद्ध उसे तैयार करके उसे निर्विशेष ज्ञान के अतिरिक्त सब कुछ अच्छा है- इस प्रकार कहकरसम्पूर्ण जगत को मायाविलासिनी का विलास समझने के लिए तत्पर कर देता है। इसके पश्चात् उस मंत्री की पुत्री मिथ्यादृष्टि आती है एवं राजा को विभिन्न उपायों से लुभाकर अपने वश में कर लेती है। कुछ समय में दोनों आनन्दित होकर क्रीड़ारत रहते हैं। उसी बीच में वह त्रुटिवश प्राकृत श्लोक गाती है। जिसके फलस्वरूप उसे महाराज कोछोड़ना पड़ता है। वह रोती हुई चली जाती है। इतने में इतिहास इस सूचना को मंत्री तक पहुँचाता है। तब तक यतिराज एवं सुनीति आते हैं। दोनों विभिन्न प्रकार से मिथ्यादृष्टि के शोक में विह्वलराजा को समझाते हैं किन्तु राजा को उससे शान्ति नहीं मिलती ।

नाटक के तीसरे अङ्क में हाथ में चामर लिए हुए सद्‌विद्या एवं गीता का प्रवेश होता है। गीता ने उससे राजकुल का समाचार लिया कि रामानुज राजकुल से नाराज होकर कांची चले गये हैं। सेनापति तंत्रपाल लापता हैं। गीता कहती है कि देवी सुमति भी राजा के वेश्या प्रेम के कारण दु:खी होकर सुनीति सहित नारायण की उपासना कर रही है। इस प्रवेशक के बाद दोनों निकल जाती हैं । रङ्ग मंच पर यामुनाचार्य के हाथ को पकड़े हुए यादव एवं भाष्कर के द्वारा अनुगम्यमान एवं मायावाद के द्वारा मार्ग दिखाए जाते हैं। इसके बाद वेदमौलि का प्रवेश होता है

हालांकि यादव एवं भाष्कर, मायावद एवंवेदमौलि को अपने अपने अनुकूल समझते हैं। तथापि वेदमौलि यामुनाचार्य के कथन को ही सही मानते हैं। उसके पश्चात इन सबके सैद्धान्तिक मतभेदों का सुन्दर निरूपण कराया गया है। वेदमौलि यामुनाचार्य के प्रति अधिक आकृष्ट प्रतीत होते हैं। प्रियरङ्गम एवं रङ्गप्रिय नाम के दो वैतालिक राजा की सेवा में उपस्थित होते हैं और मायावाद का पर्दाफश करते हैं। मायावाद चालाकी से वैतालिकों को बालक कह कर अपनी हार को छिपा लेता है और कहता है कि मैं तुम्हारे गुरू रामानन्द से निपट लूँगा। इसके बाद राजा यामुनाचार्य के प्रति वह बहुत अधिक विस्मृत होता है । इस तरह सभी लोग परिदृश्य से गायब हो जाते हैं।

यतिराज विजयनाटकम् के चौथे अङ्क में विशिष्टाद्वैत मतानुप्राणित जनक का प्रवेश होता है। उनका गीता के साथ वार्तालाप होता है। जीव तथा परमात्मा का स्वरूप एक न होकर उनका स्वभाव एक होता है। इस बात को जनक गीता से बताते हैं। वे खुद गीता का सहकारी बनने का आश्वासन देते हैं। इस विष्कम्भक के बाद रामानुज, यामुन एवं राजा वेदमौलि आते हैं। सुनीति भी आ जाती है। राजा एकान्त में सुमति विषयक अपने परम प्रेम को सुनीति से व्यक्त करता है । वह सुमति को गीता के साथ लिवा आती है। यामुनादि पहले से ही चले जाते हैं । सुमति भी श्रृंगारिक भावों को सखियों से प्रकट करती है। मूर्छित राजा को सुमति होश में लाती है। दोनों सखियाँ भी चली जाती हैं इसके पश्चात् दोनों का आनन्दपूर्वक मिलन होता है। संभोग श्रृंगार का पूर्ण समारम्भ होता है। फिर सुबह हो जाती है दोनों चले जाते हैं और यहीं पर यह अङ्क समाप्त हो जाता है।

इस नाटक के पाँचवें अङ्क में सुदर्शन विष्कम्भक उपस्थित करता है। उसके पश्चात् परस्पर विवदमान संन्यासी (विवरण प्रस्थान) एवं शुक्ल पट अर्थात् वाचस्पति मिश्र अपने अपने विशिष्ट मतों के साथ प्रकट होते हैं । राजा एवं देवी का प्रवेश होता है। परदे के पीछे से रामानुज को ललकारते हुए शङ्कराचार्य के प्रवेश की सूचना मिलती है। शङ्कर एवं सदूह (तंत्रपाल) का वाक्कलह होता है । मायावाद भी शङ्कर के साथ है। योगाचार एवं शून्यवाद भी शंकर की सहयता में उपस्थित रहते हैं। सदूह के पक्ष में पराङ्कुश आता है। शंकर का पराभाव दिखाया जाता है। वह विष्णुभक्ति को मान लेते हैं। मायावाद बिखर जाता है। यादव एवं भाष्कर इत्यादि भी बिना लड़े हुए रामानुज मत के सामने अपनी पराजय मान लेते हैं। इस तरह रामानुज एकमात्र मुख्य अमात्य पदारूढ़ हो जाते हैं। यहीं पर यह अङ्क समाप्त हो जाता है।

इस नाटक के छठवें अङ्क में शङ्कर एवं रामानुज का प्रेमभाव से मिलन दिखाया जाता है। शङ्कर पर्यङ्क विधा की उपासना करने के लिए अनन्तपुर प्रस्थान कर जाते हैं। यतिराज, रामानुज माधवोत्सव की तैयारी का आदेश देते हैं। वेद विचार एवं इतिहास, पुराण इत्यादि राजा का दर्शन करते हैं। स्फोटरहित शब्द भी राजा को प्रणाम करता है। सभी लोग आनन्द विभोर हो जाते हैं। आखिर में दिव्य पुरुष प्रकट होकर राजा को यह सूचना देता है कि भगवान वासुदेव प्रसन्नचित्त हैं इसके साथ ही भरतमुनि उक्त भरतवाक्य से नाटक की समाप्ति करते हैं।

चैतन्य चन्द्रोदय नाटकम्

'चैतन्य चन्द्रोदय' नामक नाटक की रचना सोलहवीं शताब्दी में नाटककार परमानन्द दास सेन द्वारा की गई । इस नाटक में भी दस अंक हैं। कहा जाता है कि

'परमानन्ददास सेन' को स्वयं श्री चैतन्यमहाप्रभु ने 'कर्णपूर' उपाधि से विभूषित किया था। साथ ही चैतन्य महाप्रभु की दार्शनिक विचारधारा ही नाटक की पृष्ठभूमि में निहित है। चैतन्यचन्द्रोदय नाटक एक तरह से मिश्रित नाटक है। क्योंकि इसके सभी पात्र प्रतीकात्मक नहीं हैं।

पात्र तालिका

सामान्य पात्र

1. सूत्रधार
2. विदूषक
3. वैतालिक
4. दौवारिक
5. कंचुकी
6. पारिपार्श्विक

अमूर्त पात्र

1. कलि
2. मैत्री

3. अद्वैत

4. अधर्म

5. प्रेम भक्ति

6. भक्ति देवी

7. विराग

मूर्त्त पात्र

1. भगवान

2. श्रीकृष्ण

3. नारद

4. श्रीवास

5. ब्रह्मानन्द

6. गोविन्द

7. सुबल

8. गन्धर्व

9. राधा

10. दामोदर

11. श्री कृष्ण चैतन्य

12. रामानन्द

13. चन्दनेश्वर

14. नित्यानन्द

15. जगदानन्द

16. सार्वभौमभट्टाचार्य

17. गोपीनाथाचार्य

18. मुकुन्द

19. मुरारी

20. हरिदास

21. राती

22. जरती

23. पुरूष

24. गदाधर

25. गड्गादास

26. कुसुमासव

27. रत्नाकर

28. मल्ल भद्र

29. विश्वम्भर

30. ललिता

31. वक्रेश्वर

32. गड्गा

33. गन्धर्वनामा

इस नाटक के प्रथम अङ्क की प्रस्तावना में सूत्रधार श्री चैतन्यमहाप्रभु के जन्म का कारण 'स्वानन्दावेश' के माध्यम से बताता है। इसके उपरान्त अधर्म व कलियुग से चैतन्य महाप्रभु की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अफसोस जाहिर करता है और श्रीवास, हरिदास आदि का परिचय देते हुए बताता है कि ये सब उन्हीं के पार्षद थे। श्रीवास के घर मे लगे व्यक्तियों को निकलकर अपनी ओर आता देखकर कलियुग, अधर्म को छिप जाने का स्थान बताता है। इस तरह विष्कम्भक समाप्त हो जाता है।

इसके बाद अद्वैत और विश्वम्भर आदि रङ्गमंच पर अवतीर्ण होते हैं। सर्वप्रथम श्रीवास मृत्यु से पूर्व की कथा सुनाता है फिर भगवान मुकुन्द की चतुर्भुज

परायणता तथा मुरारी की भक्तिहीनता का वर्णन करते हैं। भगवान विश्वम्भर भी जगन्नाथ की पत्नी शची से उसके पुत्र के रूप में खुद के अवतार की बात करते हैं। इसके बाद सभी लोग भगवान श्रीकृष्ण के भजन कीर्तन में तल्लीन हो जाते हैं।

इस नाटक का दूसरा अंक 'सर्वावतारदर्शन' है। इस अंक में संसार की वर्तमान दशा पर पहले विराग दु:ख प्रकट करता है फिर भक्तिदेवी आती हैं। इस तरह दोनों के मध्य श्री चैतन्य की प्रभुता के बारे में बातचीत होती है। जहाँ भक्तिदेवी चैतन्य की बुद्ध, वराह तथा नरसिंह आदि मुख्य अवतारों के क्रम से चैतन्य की षड्भुजाओं के रूप के प्रदर्शन के बारे में बताती हैं । दोनों निकल जाते हैं। फिर भगवान विश्वम्भर व अद्वैताचार्य के बीच बातचीत होती है। भगवान अपनी प्रतिज्ञानुसार अद्वैताचार्य को महामोहक श्रीकृष्ण के स्वरूप का दर्शन कराते हैं। वह आनन्दित होता है। फिर चैतन्य की मां शची देवी की रसोई में सभी लोग भोजन करने पहुँच जाते हैं।

इस नाटक के तीसरे अङ्क का नाम 'दानविनोद' है। इसमें मैत्री, विवेक और प्रेमभक्ति का प्रतीकात्मक वंशावली में वर्णन किया गया है। जिसमें प्रेमभक्ति और मैत्री का प्रारम्भ में अलाप होता है । यहाँ चैतन्य की कृष्णलीला आदि का रहस्य भी उजागर किया जाता है। इस अङ्क की विशेषता यह है कि इसमें श्री कृष्ण की रासलीला सम्बन्धी एक नाटक भी खेला जाता है। नाटक में श्रीकृष्ण द्वारा राधा से दान मांगने का अलौकिक चित्रण दर्शाया गया है। आनन्द की पराकाष्ठा पर पहुँच कर इसका पर्यवससान होता है।

इस नाटक के चौथे अङ्क का नाम 'सन्यासपरिग्रह' है। इस अंक में भगवान विश्वम्भर की वार्ता आचार्य रत्न की पत्नी एवं शची में होती है। इसके बाद श्रीवास

के घर में सब कीर्तन करते हैं। रात को कीर्तन समाप्त होता है । तभी संन्यास ग्रहण करने के लिए विश्वम्भर देव चुपचाप निकलते हैं। वह अपने साथ नित्यानन्द और आचार्यरत्न को भी साथ में ले लेते हैं। बचे हुए लोग जागने पर तरह तरह से विलाप करते हैं। आचार्यरत्न थोड़ी देर बाद वापस लौटकर सबको चौंकाने वाली सूचना देते हुए कहते हैं कि भगवान विश्वम्भर ने केशवभारती से सन्यास की दीक्षा ले ली है और उनका सन्यासाश्रम का नाम कृष्ण चैतन्य हो गया है। आचार्यरत्न कहते हैं कि उन्हें सभी लोगों को यह सूचना देने के लिए वापस भेजा गया है। इसके बाद प्रभृति अद्वैत उनकी माता भगवती शची को आश्वस्त करने के लिए जाने की योजना तैयार करते हैं।

इस नाटक का पॉचवां अङ्क 'अद्वैतपुरविलास' है । इस अङ्क में चैतन्यदेव संन्यासाश्रम से सिद्ध परा आत्मनिष्ठा को प्राप्त करते हैं और इतस्त्रः परमहंस रूप में विहार करते हैं। बालकों द्वारा हरि हरि कहे जाने पर भगवान कृष्ण के प्रति उनका प्रेम उमड़ पड़ता है और वह सीधे वृन्दावन के लिए चल पड़ते हैं। उनके साथ चल रहा नित्यानन्द उन्हें धोखे में रखता है। और रास्ते में गंगा नदी को ही यमुना बताता है। दोनों उसी में गोता लगाते हैं। अद्वैतादि को नित्यानन्द सूचना भिजवाता है। अद्वैत के आने पर सप्रेम मिलन होता है। इसके बाद भगवान चैतन्य उसके साथ उसके घर जाते हैं। नवद्वीप में उसके घर सूचना भेज दी जाती है। जिस पर असंख्य जनसमुदाय श्रीवास और शची के साथ भगवान चैतन्य के दर्शनार्थ उमड़ पड़ता है भगवान ने अद्वैत के घर में ही संन्यासाश्रम की पहली दीक्षा ग्रहण की । यहाँ उनका शची श्रीवास आदि से आनन्द व स्नेह पूर्वक मिलन होता है।

छठवें अङ्क का नाम 'सार्वभौमानुग्रह' है। इस अङ्क की शुरूआत गंगा और समुद्र के मध्य संवाद से होती है। जिसमें श्रीकृष्ण चैतन्य के मुकुन्द नित्यानन्द और जगदानन्द के साथ वृन्दावन के लिए चलने की सूचना मिलती है। रास्ते में वे कटक नामधारी राजधानी में भी रूके। दूसरे दिन जगन्नाथ का दर्शन करना चाहा वहां पर उनकी ईश्वरता के सम्बन्ध में गोपीनाथाचार्य से सार्वभौम भट्टाचार्य के शिष्यों का शास्त्रार्थ होता है। श्री जगन्नाथ स्वामी का दर्शन होता है और सार्वभौम भट्टाचार्य को श्री चैतन्यदेव अपना ऐश्वर्य दिखाते हैं। शास्त्रों और शाङ्कर मतवाद का चमत्कृत भट्टाचार्य द्वारा तर्कसंगत उपहास किया जाता है। यहां पर सिद्ध किया जाता है कि मूर्त्त आनन्द ही कृष्ण है। वह भगवान के रूप में श्रीकृष्ण चैतन्य की वन्दना करता है।

सातवें अङ्क का नाम 'तीर्थाटन' है इस अङ्क में भट्टाचार्य और राजागजपति का श्री चैतन्यदेव प्रशंसापरक संलाप होता है। विप्रों का आगमन होता है क्योंकि श्री चैतन्यदेव को गोदावरी तट तक भेजना है। वे बताते है कि कूर्मनाम के ब्राह्मण से वासुदेव नाम के कुष्ठ रोगी से भगवान कूर्मक्षेत्र में मिले । फिर भगवान नृसिंह्म का दर्शन नृसिंह्म क्षेत्र में जाकर किया । इसके बाद भगवान चैतन्यदेव का गोदावरी तीर पर वैष्णव भक्त रामानन्दराय से मिलन हुआ। इसके उपरान्त उन ब्राह्मणों द्वारा प्रश्नोत्तर निवेदित किए गये । ये भक्ति विषयक प्रश्नोत्तर भगवान और रामानन्द के बीच हुए विप्रों को पारितोषिक देकर राजा ने विदा किया। तभी दौवारिक ने सूचना दी कि कर्णाटक देश के राजा का उपहार उनके अमात्य मल्लभट्ट लेकर आए हुए हैं। इस दरबार में श्रीकृष्ण चैतन्यदेव के गौरवशाली चरित्रों की चर्चा मल्लभट्ट ने भी की । इसके उपरान्त ही अन्य तीर्थस्थानों का भ्रमण करने के बाद भगवान श्रीकृष्ण चैतन्य कटक आए ।

आठवें अङ्क का नाम 'प्रतापरूद्रानुग्रह' है । इस अंक में श्रीकृष्णचैतन्य, काशी मिश्र के घर में रुकते हैं और श्री जगन्नाथ स्वामी का दर्शन लाभ प्राप्त कर हर्षित होते हैं । यहीं पर श्री कृष्ण चैतन्य का दर्शन गोविन्द, ब्रह्मानन्द भारती व दामोदर स्वरूप करते हैं। मौका देखकर सार्वभौम राजा गजपति की चैतन्यदर्शनोत्कण्ठा का निवेदन करते हैं लेकिन श्री चैतन्य इस पर राजी नहीं होते । तभी सार्वभौम राजा को एक उपाय सुझाते हैं। इस दौरान श्री कृष्ण चैतन्य का दर्शन करने के लिए नवद्वीप के लोग भी पहुँच जाते हैं। राजा भी तपस्वी भेष धारण करके किसी तरह भगवान का दर्शन करने में सफल हो जाता है। जब भगवान यह सब जान जाते हैं तो उसको प्रेम से आलिंङ्गित कर लेते हैं।

नवें अङ्क का नाम 'मथुरागमन' है । इस अङ्क में भक्तजनों के प्रेम का वर्णन एक किन्नर युगल द्वारा कराया जाता है। तदुपरान्त चैतन्यदेव मथुरा जाते हैं। रास्ते में मिलने वाले दुष्टजन, क्रूरकर्मा आदि उनके शरणागत होते जाते हैं। कुछ दिन वह नवदीप में ही बिताते हैं और फिर वृन्दावन में रहकर वापस लौट आते हैं। वाराणसी में रूककर जगन्नाथ धाम वापस आ जाते हैं।

दसवें अङ्क का नाम 'महामहोत्सव' है। इस अङ्क में भक्तजनों का समागम होता है। उनके पार्षद शिवानन्द की सेवा और स्तुति का इस अंक में चमत्कारिक वर्णन है भक्तजन इकट्ठे होते हैं। कीर्तन होता है और महाप्रभु के रूप में चैतन्यदेव की प्रतिष्ठा पूरी तरह जम जाती है। धूमधाम से श्री जगन्नाथ के रथयात्रा की तैयारी होती है । राजा गजपति की देवियाँ भी दर्शन करती हैं। रथयात्रा होती है और उसी प्रसङ्ग में अनेक पात्रों के द्वारा गोपियों के कृष्ण प्रेम का सरस चित्रण भी

तुलनात्मक दृष्टि से किया जाता है। अंत में अद्वैत के मुख से भरतवाक्य कहे जाने के बाद नाटक की इतिश्री हो जाती है।

5. अमृतोदयम्

अमृतोदयम् नाटक प्रतीकात्मक शैली में लिखा गया है। इसे गोकुल नाथ ने लिखा है जो मैथिल हैं ।[34] न्याय दर्शन इस नाटक की आधारभृत्ति है। 16वीं शताब्दी में रचित इस नाटक के पात्र शास्त्रीय पदार्थ व शास्त्रकार लोग हैं । अमृतोदयम् में पांच अङ्क हैं।

म0म0 गोकुलनाथोपाध्याय का समय 1650 ई0 के बाद का माना जाता है।[35]

पात्र तालिका

सामान्य पात्र

1. राग नामक नट — सूत्रधार
2. राग को सारी स्थिति का बोध कराने वाला — नट

---

34. श्रीमद्गोकुलनाथोपाध्यायकृतम अमृतोदयम् काव्यमाला 59

35. श्री गोकुलनाथोपाध्याय ने एक पुस्तक मास मीमांसा लिखी है जिसकी पुष्पिका में इति महामहोपाध्याय - श्री गोकुल नाथ शर्मप्रणीत - मास मीमांसा-परिपूर्णा। शाके 1680 । भाद्रकृष्ण दशमी चन्द्रेऽखिलदिदं रजनीनाथ: 'मासमीमांसा' उनके प्रौढ़ावस्था की रचना होगी। अत: उनकी स्थिति 1650 ई0 के बाद मानने में कुछ आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

3.	प्रतिबन्ध नामक न्याय राजा के दरबार का	—	कंचुकी
4.	साधन सिद्धि	—	चेटि
5.		—	विदूषक

पुरूष पात्र

1.	श्रुति द्वारा राज्याभिषिक्त पात्र	—	अपवर्ग
2.	न्याय का पुत्र	—	परामर्श
3.	योगदर्शन के प्रर्वतक	—	पतंजलि
4.	संसारता की असारता से जन्यभाव	—	निर्वेद
5.	भैरो भक्त कायालिक	—	महाव्रत कायालिक
6.	पतंजलि शिष्य	—	जाबालि
7.	जीव मुमुक्षु	—	पुरूष
8.	जैन दर्शन में कहा गया नियम	—	निर्जर
9.	बुद्ध द्वारा उपदिष्ट मुक्तिमार्ग	—	बुद्धमार्ग
10.	ईश्वर जगत कारण	—	पुरूषोत्तम्
11.	शैवदर्शनोक्त नियम्	—	पाशुपतिसिद्धान्त

12. जैन मत — अर्ह सिद्धान्त

13. यज्ञादि से मोक्ष परक सिद्धान्त — कर्मकाण्ड

14. श्री कृष्ण भक्ति शाखा के दर्शनमत् — वैष्णव सिद्धान्त

15. सांख्य योग दर्शन मत् — सांख्य योग

स्त्री पात्र तालिका

1. अपवर्ग को राज्याभिषिक्त करने वाली स्त्री — श्रुति

2. श्रुति की सहायता करने वाली प्रधान रूपेण — आन्वीक्षिकी

3. विप्रतिपत्ति द्वारा पक्षता को प्रेरित करने वाली — कथा

4. संशय तथा अनुमितीच्छा की अयोनिजा कन्या — पक्षता

5. पुरूष को ज्ञान की ओर ले जाने वाली — श्रद्धा

6. ज्ञान से पूर्व होने वाली जिज्ञासा — विविदिषा

7. रामानुज मत — प्रथम-सेश्वर मीमांसा

8. शांकरमत् — द्वितीया-सेश्वर मीमांसा

9. उपनिषद् — ब्रह्मविद्या

10. अदृष्टवादी जैमिनीमत — मीमांसा

11. विद्याअधिष्ठात्री — सरस्वती

इस नाटक के पहले अङ्क का नाम 'श्रवणसम्पत्ति' है। इस अङ्क के प्रवेशक में संसार नाटक का सूत्रधार शरीरस्थ सकल प्रवृत्ति का मूलराग है। आकाशवाणी द्वारा राग के आक्रामक विराग की बात भी प्रस्तावना में कही गयी है। इस बात से डर कर राग मोक्षाभिमुख होता है। श्रुति की प्रमिति नामक कन्या का अपहरण करने के लिए बौद्धसेना इसी समय आक्रमण करती है। बौद्धों के हाथ में पड़ी हुई प्रमिति को छुड़ाने के लिए आन्वीक्षिकी परविद्याओं के साथ तत्पर होती है।

इसके बाद आन्वीक्षिकी अपहृत प्रमिति को बौद्धों से छूड़ाने मे किये गये प्रयत्नों का श्रुति से वर्णन करती है। वह बताती है कि राक्षसी सम्भावना प्रमिति को निगल जाना चाहती है पर मीमांसा द्वारा वह मार भगाई गयी। दोनों ओर की सेना के तैयार होने पर कणाद ने आकर उसको बौद्धों से झगड़ने से रोकना चाहा पर आन्वीक्षिकी उनकी बात मानने को तैयार नहीं हुई । कापिली भी प्रमृति के उद्धार के लिए आन्वीक्षिकी का साथ देने को अग्रसर हुई परन्तु वह शत्रुओं द्वारा घिर गयी। दोनों सेनाओं के बीच युद्ध छिड़ गया । आन्वीक्षिकी के प्रधान योद्धा गौतम, वात्स्यायन, उद्योतकर तथा वाचस्पति रहे । प्रमिति सुरक्षित रूप में छुड़ा ली जाती है । प्रमिति पुरुष को सौंपी जाती है मगर पुरु ष उस पर विश्वास नहीं करता । इसके बाद कथा को श्रुति के द्वारा न्याय पुत्र परामर्श के साथ पक्षता के संयोग कराने की आज्ञा दी गयी।

दूसरे अङ्क का नाम मननसिद्धि है। इसमें पक्षता के प्रति परामर्श के अनुराग की बात चेटि और कंचुकी के कथनोपकथन में कही गयी है। उसे पक्षता का दर्शन तृतीय भूमिका पर होता है। चार्वाक का उदयन के साथ युद्ध भी उसी बीच दिखाया

गया है। उदयन को युद्ध से अलग होने की बात कुमारिल और प्राभाकर आकर कहते हैं। लेकिन उदयन उनकी बात नहीं मानते । जिससे कुपित होकर कुमारिल और प्रभाकर, पक्षता तथा परामर्श की संतति के पैदा होते ही मृत्यु को प्राप्त होने का शाप देते हैं लेकिन युद्ध में उदयन की ही विजय हुई और सोम, सिद्धान्त, कापालिक आदि जो चार्वाक के मित्र थे परास्त हुए और पलायन कर गये।

तीसरे अङ्क का नाम 'निदिध्यासन सिद्धि' है । इस अङ्क में निर्वेद से श्रद्धा यह पूछती है कि श्रुति काम लोभ को जीतने के कुछ प्रयास कर रही है या नहीं? निर्वेद ने इस पर सकारात्मक उत्तर दिया । इसके बाद अनुमिति और प्रमिति से पुरूष संयुक्त हुआ। नियमों ने संयम की दुहिता सिद्धि को पुरुष से मिला दिया। महामोह और उसके परिजन सिद्धि से पुरुष के मिल जाने पर भाग गये। जाबालि ने श्रुति के महामोह के प्रति विद्वेष के विषय में जानना चाहा। जिस पर अपवर्ग को राज्याभिषिक्त करने का कारण पतंजलि ने बताया ।

चौथे अङ्क का नाम 'आत्मदर्शन' है । पुरुषोत्तम के साक्षात्कार के जगत् के तत्त्व को जानने पर पुरुष की समाधि सिद्धि होती है। सृष्टि, स्थिति, संहार का मूल स्वरूप प्राप्त कर पुरुष मुक्ति के द्वार पर स्थित हो जाता है।

पांचवें अङ्क का नाम 'अपवर्ग प्रतिष्ठा' है। इस अङ्क में पुरुष के मोक्ष प्राप्ति का वर्णन किया गया है। इसमें श्रवणादि क्रिया कलाप द्वारा अपवर्ग प्राप्त होता है। जिसके स्वरूप में विवाद होता है। इसमे श्रुति के समक्ष बुद्धमार्ग, जैन मार्ग, पाशुपतमार्ग, वैष्णवमत, मीमांसा मत, रामानुजमत, शांकरमत, सांख्ययोगमत आदि अपने अपने सिद्धान्तों द्वारा प्राप्त मोक्ष को प्रस्तुत करते हैं, लेकिन श्रुति सबका खंडन करती है। वह अपवर्ग पद पर आन्वीक्षिकी समर्थित निर्वाण नामक मोक्ष को

प्रतिष्ठित करती है । गोकुलनाथ अपवर्ग प्रतिष्ठा को प्रबन्ध रूप में रखने के लिए नियुक्त किये जाते हैं। इसे 'अपवर्ग प्रतिष्ठा' नाम न्यायमत समर्थित अपवर्ग की प्रतिष्ठा कराने के कारण ही दिया गया ।

धर्मविजयनाटकम्

धर्मविजयनाटकम् एक प्रतीक नाटक है । भूदेव शुक्ल ने इसकी रचना सोलहवीं शताब्दी में की।[3] तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण और शिवभक्ति का प्रतिपादन ही इस नाटक की आधारभूमि है । इस नाटक में भी पांच अङ्क हैं।

पात्र-तालिका

सामान्य पात्र

1. सूत्रधार
2. नटी

पुरुष पात्र

1. धर्म (राजा)
2. अधर्म (प्रतिनायक)
3. वर्णशंकर
4. अनाचार
5. व्यभिचार
6. वैद्य

7. पौराणिक

8. स्मार्त

9. गणक

10. व्यवहार

11. प्राडविवाक

12. प्रायश्चित

13. सत्य अहिंसा आदि

14. क्रोष्ठपाल

स्त्री पात्र

1. ऊर्ध्वगति

2. नीचसंगति

3. पंडित संगति

4. परस्पर प्रीति

5. दया

6. शांति

स्त्री पात्र

7. परीक्षा

8. प्राकृत

9. कविता

10. विधवा

11. विद्या

कथावस्तु

धर्मविजयनाट्कम् के प्रथम अङ्क में प्रस्तावना के पश्चात वर्णशंकर और उसकी पत्नी नीचसंगति के वार्तालाप के दौरान वर्णशंकर अपनी पत्नी को समझाते हुए धर्म विरोधिनी, कृपणता नृशंसता, मलिनता और दुर्दान्दता के प्रति अपना विश्वास प्रकट करता है। उसके पश्चात कलियुग की वर्णाश्रम व्यवस्था के बारे में भी बताता है । तत्पश्चात राजा धर्म और उसकी पत्नी ऊध्वगति का रंगमंच पर प्रवेश होता है। राजा धर्म कुलांगनाओं के पवित्र चरित्र और वर्णाश्रम व्यवस्था का मनोहारी वर्णन करता है। और वर्तमान समय के दुःख को प्रकट करता है। अधर्म नाम शत्रु पर विजय प्राप्त करने तथा पुराण सुनने के लिए तीर्थयात्रा पर चला जाता है।

इस नाटक के दूसरे अङ्क में व्यभिचार, जो कि अधर्म का चर है, दृष्टिराग की कन्या परस्पर प्रीति के साथ काशी में गृहस्थ जीवन व्यतीत करने के लिए आता

है और वहाँ के निवासियों पर पड़े प्रभाव का वर्णन करता है। यहाँ काशी के लोगों की व्यभिचार परायणता का वर्णन किया गया है। पश्चिमी प्रदेशों यथा सिन्धु, कुरुक्षेत्र काश्मीर आदि जगहों से अनाचार प्रभावित लोगों के धर्महीनता एवं दाम्भिकता का विवेचन किया गया है। अनाचार के साथ व्यभिचार तथा परस्पर प्रीति मन ही मन भावी विलास व्यवस्था को तय कर लेती है । यातना का उपभोग करने के लिए राजा अधर्म अपनी परमप्रिया भैरवी के साथ आते हैं। बाल विधवा और कूट पौराणिक मिलते हैं तथा अधर्म और पौराणिक तरह तरह की अभिसंधि करते हैं।

तीसरे अङ्क में पण्डितसंगति का प्रवेश होता है। वह वृक्ष की शाखा से लटकती हुई रस्सी के फन्दे से आत्महत्या का प्रयास करती है। परीक्षा उसे इस बंधन से मुक्त करती है। इसके उपरान्त परीक्षा ज्योतिषी, वैद्य, धूर्त्त, कर्मकाण्डी की अज्ञानता का पर्दाफाश करती है।

चौथे अङ्क में प्राडविवाक के प्रवेश के पश्चात अनृत को दण्ड देने के लिए दण्ड और व्यवहार सत्य की नियुक्ति करते हैं। अहिंसा को हिंसा के समूल नाश के लिए भेजते हैं। काशी प्रधृत अधर्म द्वारा प्रयाग में अपना खेमा डालने और धर्म से युद्ध करने की मंशा की सूचना व्यवहार सभी को देता है। पांचों महापापों को व्यवहार मृत्युदण्ड देता है तथा क्रोष्ठपाल उन सभी को वध के लिए ले जाता है।

पांचवें अङ्क में गङ्गास्नान व प्रायश्चित प्रवेश करते हैं। दोनों के बीच बातचीत में धर्म और अधर्म के सैनिकों के बीच युद्ध का वर्णन किया जाता है। राजा धर्म की जीत होती है। कविता उनकी प्रशंसा करती हुई प्रवेश करती है। प्राकृत और सभी विधाओं की भी प्रविष्टि होती है । उपासना सभी को परदे के पीछे से सभी शास्त्रों को नमस्कार करने तथा भगवान शंकर का ध्यान करने का उपदेश देती

है। विधाओं द्वारा भी इस उपदेश पर मनन होता है। इस तरह इस नाटक की समाप्ति भरतवाक्य के साथ होती है।

जीवानन्दनम्

यह नाटक भी प्रतीक शैली में लिखा गया है। जो आयुर्वेद प्रधान नाटक है। आनन्दराय मखी ने इस नाटक की रचना की।[36] इन्होंने मथुरा और पुदुकोटा राज्य की संयुक्त सेना को अपने युद्ध कौशल से 1725 ई0 में पराजित किया था। वहीं विद्वानों के अनुसार इन्होंने अपने आश्रयदाता 'सहाजिराज' जिनका समय 1684 ई0 से 1710 ई0 तक माना गया है, के काल में ही जीवानन्दम् की रचना की थी अर्थात जीवानन्दम् का रचनाकाल 1710 ई0 के पूर्व निश्चित होता है।[37]

पात्र तालिका

नायक के पक्ष में

1.	मुख्य नायक	-	जीवराजा
2.	जीवराजा की पत्नी	-	बुद्धि
3.	त्रैवर्गिक मंत्री	-	विज्ञानशर्मा

---

36. आनन्दरायमखिना प्रणीत्म - जीवानन्दम्

37. जीवानन्दम् - भूमिका, स0 मे0 दुरैस्वामी अय्यंगार, पृ0 11-12

4.	बुद्धि सखी	–	धारणा

नायक के पक्ष में

5.	अपवर्ग मंत्री	–	ज्ञानशर्मा
6.	प्रतिहारी	–	प्राण
7.	धारणानामान्तर	–	गार्गी
8.	विचारसाथी	–	किंकर
9.	वन्दना करने वाले	–	वैतालिक
10.	नागरिक	–	विचार
11.	जीव के पक्ष में	–	स्मृति
			श्रृद्धा
			परमेश्वरी
12.	राजा का नर्म सचिव	–	विदूषक
13.	जीव के सहायकगण	–	राजमृगाङ्क आदि अनेक औषधियाँ
14.		–	शिवभक्ति

प्रतिनायक के पक्ष में

1.	प्रति नायक	–	राजयक्ष्मा
2.	तत्पत्नी	–	विषूची
3.	सेनापति	–	संधिपात्र
4.	यक्ष्मा का मंत्री	–	पाण्डु
5.	कास पत्नी	–	छर्दि
6.	किंकर	–	स्वास, कास
7.	छर्दिस पत्नी	–	कण्ठकण्डूति
8.	यक्ष्मा के सहयोगीगण	–	गलगण्डक
			कुष्ठ
			उन्माद
			प्रमेह
			अर्ष
			अश्मरी
			कर्णमूल

			कामला
			शूल
9.	यक्ष्मा का चर	-	गद (हृद् रोग)

प्रतिनायक के पक्ष में

10.	पाण्डु का सेवक, गुप्तचर	-	व्याक्षेय
11.	यक्ष्मा के सहायक	-	क्रोध तथा अनेक अन्य रोग
12.	यक्ष्मा का सेवक	-	वल्लभपाल
13.		-	अपथ्यता
14.	चर	-	वात, पित्त , कफ
15.		-	अतिबुभुक्षा आदि दोष
16.		-	मत्सर
17.			काम

कथावस्तु

इस नाटक के पहले अंङ्क में जीवराजा का मंत्री विज्ञान शर्मा अपने प्रतिद्वन्द्वी राजयक्ष्मा के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए धारणा नाम की स्त्री को राजाज्ञा

से गुप्तचर बनाकर भेजता है। धारणा तापसी भेष धारण करती है और शत्रु राजयक्ष्मा के बारे में सभी तरह की सूचना प्राप्त कर विज्ञान शर्मा तक पहुँचती है। वह राजयक्ष्मा के देह नामक पुर मंत्री द्वारा आक्रमण करके जीवराजा को प्रतिकूलता की बात भी बताती जाती है। उसके द्वारा विरोधियों को पराजित करने का उपाय भी बताया जाता है। इसके पश्चात विजय के लिए जीवराजा शिव और उमा की उपासना के लिए पुण्डरीक पुर पहुँचता है।

इस नाटक के दूसरे अङ्क में जीवराजा के विषय में जानने के लिए राजयक्ष्मा अपने भृत्य, कास को भेजता है। रास्ते में उसकी मुलाकात पत्नी छर्दि से होती है और दोनों कुछ देर के लिए वार्तालाप करते हैं । तत्पश्चात जीवराजा के द्वारा संकट उत्पन्न किये जाने की बात जानकर पाण्डु अपने सैनिक सन्निपात कुष्ठ आदि के साथ उसको हटाने का उपाय सोचता है। जीवराजा की बात कर्णमूल नामक गुप्तचर से भी पाण्डु को पता चलती है । जीवराजा को हटाने के लिए पाण्डु अपने रोग सैनिकों को उसके (जीवराजा) पुर को घेरने को भेजता है।

इस नाटक के तीसरे अङ्क में जीवराजा के पुर में यक्ष्मा का हृद्रोग नामक गुप्तचर प्रविष्ट होता है । वहाँ वह जीवराजा के विचार नामक नगराध्यक्ष और किंकर के द्वारा रात्रि में घूमता हुआ पकड़ा जाता है। रोगरूप अनेक सैनिक जो पाण्डु द्वारा भेजे गए हैं, जीवपुर पर आक्रमण करना चाहते हैं। तत्पश्चात शिवोपासना करते हुए जीवराजा का प्रवेश वर्णित है। इसके बाद औषधियों का मालिक चन्द्रमा ईश्वर की आज्ञा से दिव्य औषधियों को देता है।

इस नाटक के चौथे अङ्क में विदूषक द्वारा यक्ष्मा के पक्ष वाले जीवराजा के ऊपर कूटरचना का प्रयोग कर रहे हैं, ऐसा वृत्तन्त विज्ञानशर्मा मंत्री को बताया जाता

है। तत्पश्चात विदूषक के भोजनप्रेम का वर्णन है। इसके बाद श्रद्धा आदि का राजा से वार्तालाप जीवराजा को शिवभक्ति का स्मरण राज्ञी बुद्धि के साथ उद्यानगमन, देवी के साथ राजा का झूला झूलना तथा सायंकाल आदि का वर्णन किया गया है।

पाँचवे अंड्क में जीवराजा शिव के ध्यान में रत हैं। जिस वजह से पाण्डु कामादि को ध्यान भंग करने को भेजता है लेकिन मत्सर नाम का यक्ष्मा का गुप्तचर जीवराजा के सेवकों द्वारा पकड़ लिया जाता है और फिर छोड़ दिया जाता है। मत्सर अन्य कुष्ठ आदि यक्ष्मा के नौकरों को अत्यन्त खिन्न स्थिति में रास्ते में देखता है। उन लोगों के बीच बड़े हास्यास्पद तरीके से वार्तालाप कराया गया है। यह सारे वृत्तान्त मत्सर सुनाता है और जीवराजा के मार्ग में विघ्न डालने को अपथ्यता को भेजता है जीवराजा के उपायों को मत्सर के द्वारा सुनकर यक्ष्मा भी क्रोध से भरकर उस पर आक्रमण करने की तैयारी करता है।

इस नाटक के छठे अड्क में रोग समूह जो पाण्डु द्वारा नियुक्त किए गये है, जीवराजा के पुर पर आक्रमण करते हैं। औषधि समूह और रोग समूह के घोर युद्ध का काल और कर्मपात्र के द्वारा वर्णन कराया गया है। इसी समय राजा जीव को ज्ञान शर्मा नामक मंत्री मोक्ष की ओर प्रेरित करता है तथा राजा की विजय के प्रति विज्ञानशर्मा मंत्री आश्वासन देता है लेकिन इसी बीच जीवराजा पाण्डु द्वारा भेजे गये भस्मक रोग से पीड़ित हो जाता है। सारे बलवान सैनिक, जो कि बसन्त कुसुमाकर आदि औषधियों के रूप में हैं, मारे जाते हैं।

इस नाटक के सातवें अड्क में जीवराजा शिव की कृपा से कुछ बचे हुए शत्रु सैनिकों को नष्ट कर देता है। उसके बाद प्रथम गणों से घिरे हुए शिव और उमा योग शक्ति का उपदेश देने के लिए जीवराजा के पास स्वयं आते हैं । जिससे

जीवराजा मुक्त हो जाते हैं । इस प्रकार जीव में एकान्तिक शंकरभक्ति की उत्पत्ति होने से रोग रूप अनिष्टों का नाश होता है और भरत वाक्य से अंक की समाप्ति होती है।

विद्यापरिणयननाटकम्

विद्यापरिणयननाटकम् प्रतीक नाटक है। इस नाटक की रचना 18वीं शताब्दी में आनन्दराय मखी ने ही की।[38]इस नाटक में कुल सात अंड्क हैं और यह अद्वैत दर्शन से प्रभावित नाटक है। जिससे पता चलता है कि इस पर प्रबोध चन्द्रोदय, संकल्पसूर्योदय इत्यादि नाटकों का प्रभाव पड़ा है। [39]

पात्र तालिका

सामान्य पात्र

1. सूत्रधार
2. नटी
3. पारिपार्श्विक

---

[38]. (क) आनन्दराय मखी विरचित विद्यापरिणयनम् काव्यमाला 39

(ख) संस्कृत साहित्य का इतिहास – पृ0 619

बलदेव उपाध्याय ने भी 18वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध ही इनका समय स्वीकार किया है।

[39]. कृष्णामिश्र प्रभृत्तिरत्र 'प्रबोधचन्द्रोदय' इति 'संकल्प सूर्योदय' इति च न्यवन्धिनामबहुधाप्राचीनैः .....

–विद्यापरिणयनम् अंक –1 पृ0 3

14. काम

15. लोभ

16. हर्ष

17. तांत्रिक

18. मान

19. दम्भ

20. मद

21. तापस (विवेक आदि)

22. संकल्प

23. साम्बशैव

24. योग

स्त्री पात्र

1. शिव भक्ति

2. निवृत्ति

3. प्रवृत्ति

4. अविद्या

5. असूया

6. विषय-वासना

7. विरक्ति

8. विविदिषा

9. भक्ति

10. विद्या

11. स्मृति

12. उपनिषद् देवी

कथावस्तु

विद्यापरिणयनाटकम् के पहले अंङ्क में शिव भक्ति और निवृत्ति का आगमन होता है। निवृत्ति, शिवभक्ति के माध्यम से विद्या को जीवराज से मिलाना चाहती है। बीच में विषय- वासना, प्रवृत्ति व अविद्या विध्न पैदा करते हैं।

इस नाटक के दूसरे अंङ्क में अविद्या के द्वारा जीवराजा को भक्ति विरक्ति, निवृत्ति आदि से बचाने के लिए असूया भेजी गयी है। यह असूया और प्रवृत्ति के वार्तालाप से पता चलता है। अविद्या की सहायता विषय वासना भी करती है क्योंकि

उसको इस बात का डर है कि कहीं जीवराज शमदमादि के सम्बन्ध से विद्या से सम्पर्क न प्राप्त कर लें । जीवराजा के मित्र चित्तशर्मा को अपने वश में करने की चेष्टा प्रवृत्ति आदि करती है।

इस नाटक के तीसरे अङ्क में अलिखित विद्या का चित्र जीवराजा को दिखाने के लिए विरक्ति और निवृत्ति ले जाती है। राजा जीव के सामने चित्तशर्मा एक लम्बे उपदेश में विद्या का गुणगान करता है। राजा विद्या के चित्र को देखकर आश्चर्य चकित रह जाते हैं। इसी बीच चित्त शर्मा और राजा इत्यादि के विद्या सम्बन्धी सस्पृह उल्लेखों को प्रवृत्ति और विषय वासना के साथ आई हुई अविद्या रानी विटपान्तरित होकर सुनती है। अविद्या सामने प्रस्तुत होकर राजा की भर्त्सना करती है। राजा उसे इन्द्रजाल सिद्ध करता है और प्रसंग शांत हो जाता है।

इस नाटक के चौथे अङ्क में जीव के नर्म सचिव चित्तशर्मा और सत्संग का परस्पर वार्तालाप चलता है। सत्संग जीवदेव से मिलने और विद्या के वियोग की बात भी कहता है । चित्तशर्मा अनन्य अनुराग से कार्य की सफलता की बात कहता है। फिर सब वृत्तान्त राजा को बताने के लिए निश्चित किये गये स्थान पर राजा के पास पहुँचता है। संकल्पपात्र जीवराजा को संकेत स्थान (वेदारण्यमार्ग) को बताता है। मोह की ओर से चित्तशर्मा को लालच में डालने के लिए लोकायत आदि पाषण्ड सिद्धान्त भेजे जाने की सूचना चित्तशर्मा खुद बताता है। उसे यह बात वस्तु विचार से ज्ञात हुई। चित्तशर्मा यह भी बताता है। तत्पश्चात् जीवदेव की सहायता के लिए शिव भक्ति द्वारा अपने को भेजे जाने की बात कहते हुए वस्तुविचार रंगमंच पर प्रवेश करता है। वस्तुविचार पात्र द्वारा ही बौद्ध , जैन, चार्वाक आदि का खण्डन कराया गया है। और अद्वैत की स्थापना कराई गयी है। कलि, सोम सिद्धान्त, तंत्र, माध्वसिद्धान्त और कापालिक आदि का भी सम्भाषण हुआ है। इस बात को भी

बताया गया है कि कलि में श्रद्धा दास बनी है।

इस नाटक के पांचवें अङ्क में जीव के सहयोगियों शम दम आदि को नष्ट करने के लिए विषयवासना और अविद्या अपने परिवार, काम, क्रोध, लोभ, हर्ष, मद, दम्भ आदि को आज्ञा देती है । ये सभी उसकी आज्ञा स्वीकार करते हैं मोह भी उनका सहकारी बनता है। इसी अङ्क में चित्तशर्मा का जीवराज के साथ प्रवेश होता है । वेदारण्य में दोनों पक्षों के घात-प्रतिघात होते हैं। पहले राजा मोह से ग्रसित होता है और फिर जग उठता है । अंततः अविद्या पराजित होकर सपरिवार चली जाती है और राजा विद्या की प्राप्ति के लिए दृढ़ निश्चय करता है ।

इस नाटक के छठे अङ्क में विद्या के वियोग में राजा दुःखी हो रहा है, चित्तशर्मा कहता है कि यदि दोनों में अनुराग है तो विलम्ब नहीं करना चाहिए। फिर अविद्या, निवृत्ति और योग के आने पर घबराती है। तब विषयवासना उसे धैर्य दिलाती है । तत्पश्चात चित्तशर्मा द्वारा अष्टांग योग का वर्णन कराया गया है। योग भी शिवभक्ति द्वारा ही प्राप्त है यह बात योगपात्र द्वारा ही बताई गई है । योग के कहने पर ही जीवराज अपने साथियों के साथ शिवभक्ति की ओर चल देते हैं। जिससे अविधा भयभीत हो जाती है । तद्नन्तर निवृत्ति शिवभक्ति से विवेकादि तथा कामादि में युद्ध की बात कहने जाती है।

इस नाटक के सातवें अङ्क में कामादि की पराजय विविदिषा तथा निवृत्ति के वार्तालाप द्वारा दिखाई गई है। साथ ही विविदिषा द्वारा शिवभक्ति से मिलने की बात भी कही गई है। फिर शिवभक्ति को चित्तशर्मा और राजा साष्टांग प्रणाम करते हैं। फिर शिवभक्ति विरक्ति से कहती है कि वह उपनिषद् के पास जाकर विद्या को पुण्डरीक भवन मे लाए और शीघ्र ही विवाह की तैयारी करे। इसके बाद भरत वाक्य द्वारा नाटक की समाप्ति होती है।

जीवन्मुक्ति कल्याणम्

'जीवन्मुक्ति कल्याण' प्रतीक शैली में लिखा गया नाटक है। बालचन्द्र दीक्षित के पुत्र श्री नल्लाध्वरी इस नाटक के लेखक हैं[40] अद्वैत दर्शन प्रधान इस नाटक में पांच अंड्क हैं। श्रृंगारसर्वस्व, सुभद्रापरिणय, चित्तवृत्तिकल्याण [41] अद्वैतरसमंजरी आदि ग्रन्थों की रचना इन्होंने की । श्री शाहा जी महाराज तन्जौर के आश्रित कवि नल्लाध्वरी भी थे। इसी वजह से यह आनन्दराय मखी के समकालीन ही दिखाई पड़ते हैं।[42]

पात्र तालिका

सामान्य पात्र

1. नटी

2. सूत्रधार

---

40. 'जीवन्मुक्ति कल्याणनाम् नाटकम्, यस्य कविः ....'

    श्री बाल चन्द्र मखीन्द्रनन्दनो नल्लाध्वरी ।' – प्रस्तावना से

41. चित्त वृत्तिकल्याण नाटक के विषय में आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपने ग्रन्थ संस्कृत साहित्य के इतिहास (सप्तम संस्करण, पृ0 620 पर उल्लेख किया है, वहाँ पर नल्लाध्वरी कृत 'जीवन्मुक्ति कल्याण' और 'चित्तवृत्तिकल्याण' इन दोनों नाटकों को प्रतीक नाटक स्वीकार किया गया है। विषय वस्तु व पात्र आदि का भी संक्षिप्त वर्णन है

42. जीवन्मुक्तिकल्याणम् – भूमिका पृ0 1

पुरुष पात्र

1. जीव राजा (कथानायक)
2. रमणीयचरण (अमात्य)
3. असूया
4. आपात बोध
5. मोह
6. काम
7. क्रोध
8. मत्सर
9. मद
10. आत्मगुण
11. लोभ
12. अनुग्रह
13. श्रवणशर्मा
14. शिव प्रसाद

स्त्री पात्र

1. बुद्धि (नायिका)
2. भवितव्यता
3. सत्त्वशुद्धि
4. जिज्ञासा
5. साधन सम्पत्ति
6. जीवन्मुक्ति

कथावस्तु

इस नाटक के पहले अंक में जीवअमात्यरमणीय चरण का प्रस्तावना के बाद प्रवेश होता है। राजा जीव का पुनः विवाह हो रहा है। अतः वह सत्त्वशुद्धि नाम की कन्या से जीव को सहयोग करने को कहता है । राजा जीव अपनी पहली पत्नी बुद्धि का परित्याग करना चाहते हैं । तत्पश्चात् रथ पर आरूण जीव और बुद्धि का रंगमंच पर प्रवेश होता है। बेचैन होकर जीव रमणीयचरण को याद करता है। तब निर्दिष्ट सत्त्वशुद्धि बुद्धि की गोद में बैठ जाती है। रथ का आवेग शान्त हो जाता है, वनप्रान्त पीछे छूट जाता है। भव्य स्वप्न बन सामने उपस्थित होता है । आत्म मण्डप में राजा अतिभुक्त प्रवेश करते हैं और वहां पर परमसुन्दरी का दर्शन होता है । राजा उसकी प्राप्ति के लिए इच्छा प्रकट करते हैं।

इस नाटक के दूसरे अङ्क में आपातबोध और असूया रङ्गमंच पर प्रवेश करते हैं। आपातबोध असूया को ही साधनसम्पत्ति समझता है । जीव और रमणीयचरण बातचीत कर रहे हैं। वह रमणीय चरण को उस अनिंद्य सुन्दरी की जो उन्हें अतिमुक्तात्ममंडप में दिखी थी, का अनुभवरूप दर्शन बताता है और उसकी प्राप्ति का उपाय जानना चाहता है । आपातबोध उसी समय पहुँचकर उस सुंदरी का चित्र जीव को देता है। सुंदरी अज्ञात कुलशील होने के कारण नित्यसिद्ध है। ऐसा जीव ने निर्णय किया । तत्पश्चात असूया से ज्ञात अखिल विषय बुद्धि का बेचैनी से प्रवेश होता है। बुद्धि और राजा का उपालम्भ के साथ वार्तालाप होता है। सुन्दरी के चित्र फलक को देख लेने से बुद्धि क्रुद्ध होकर चली जाती है।

इस नाटक के तीसरे अंङ्क में सत्बुद्धि की बड़ी बहन और रमणीय चरण की बड़ी पुत्री भवितव्यता बताती है कि साधन सम्पत्ति का अन्वय करने के लिए रमणीय चरण गए हैं और यह भी कहती है कि राजा जीव अब दूसरे आश्रम में पहुँच गए हैं। अज्ञानवर्मा ने कामादि शत्रुओं को उन्हें निःश्रेयस मार्ग से भ्रष्ट करने के लिए भेजा है। इस हेतु वह आत्मा के आठों गुणों को जीव के पास प्रेषित करके और स्वयं कुद्ध बुद्धि को प्रसन्न करने का प्रयत्न करती है। जीव और आपातबोध गृहस्थाश्रम की सार्थकता पर विचार करते हैं। तब तक काम, क्रोध, मद, मत्सर आदि जीव के निकट आते हैं । जीव काम के हस्ति पर आपात बोध के साथ सवार हो जाता है और उसी तरह की भावनाओं से युक्त होने की स्थिति में आता है, तब तक आठों गुण उपस्थित हो जाते हैं और वह काम आदि के पाश से बच जाता है।

इस नाटक के चौथे अङ्क में सत्त्वशुद्धि और साधन सम्पत्ति का प्रवेश होता है। साधनसम्पत्ति बताती है कि वह ब्रह्म जिज्ञासा के पास गई हुई थी और रमणीयचरण, शिव के प्रसाद को विस्मृत करने गए हैं। बुद्धि के पास सत्त्वशुद्धि है और जीव के पास आपातबोध है । साधनसम्पत्ति आगे कहती है कि वह संन्यास आश्रम में स्थित देव को ब्रह्म जिज्ञासा को समुपस्थित कर मना लेगी। उसके बाद भवितव्यता चित्र फलक में स्थित सुन्दरी को देखकर रोमांचित हो यह बताती है कि यह मेरी सखी जीवन्मुक्ति है । बुद्धि भी उसे अपनी सखी मान लेती है। इसके बाद ब्रह्मजिज्ञासा और साधनसम्पत्ति आकर सबसे भेंट करती है। दोनों देवियाँ जीवन्मुक्ति और राजा जीव को मिलाने के लिए बुद्धि को ही प्रेरित करती हैं और बुद्धि इस बात को सहर्ष स्वीकार भी कर लेती है।

इस नाटक के पांचवें अंङ्क में शिव प्रसाद अनुग्रह के साथ बातचीत करता हुआ प्रवेश करता है। जीव को बिना किसी संकट के अनुग्रह की कृपा से ब्रह्म साक्षात्कार हो जाता है। जीव अपने को धन्य मानता है । जीव और जीवन्मुक्ति का मिलन होता है। आकाश से फूलों की वर्षा होती है और इस तरह भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

'पुरंजनचरितम्'

पुरंजनचरितम् भी प्रतीक शैली में लिखा गया नाटक है। 18वीं शताब्दी में इसे श्री कृष्णदत्त मैथिल ने लिखा। पांच अङ्कों के इस नाटक में विष्णु भक्ति की महत्ता का वर्णन किया गया है। इसकी कथावस्तु भागवत पुराण के चतुर्थ स्कन्ध से सम्बन्धित है।

पात्र तालिका

पुरुष पात्र

1. पुरंजन (कथानायक)
2. सचिव
3. रसज्ञ
4. प्रजागर
5. अवधूत
6. द्युतिमान
7. सितपक्ष
8. चर
9. अविज्ञातलक्षण

10. गन्धर्वराजचण्डवेग

11. विलक्षण

स्त्री पात्र

1. पुरंजनि (कथानायिका)

2. वृत्तिमत्तिका (उसकी सखी)

3. वैदर्भि

4. नवलक्षणा

5. कालकन्यका (जराराक्षसी)

6. अमितलक्षणा

साधारण पात्र

1. सूत्रधार

2. नटी

कथावस्तु

नान्दी से प्रारम्भ हुए इस नाटक में सूत्रधार और नटी आमुख तक कवि, नाटक के विषय में वार्तालाप करते हैं। आमुख के पश्चात राजा पुरंजन सचिव

के साथ आते हैं । राजा और सचिव, राजा के योग्य एक पुर का-अनुसंधान करना है, इस विषय पर बातचीत करते हैं। प्रजागर आदि राजा पुरंजन के लिए पुरंजिनी को समर्पित करते हैं। इस अङ्क में ही पुरंजन और पुरंजनी का साक्षात्कार और गन्धर्व विवाह वर्णित है । पुरंजिनी अपना राज्य, धन और भृत्यवर्ग सब कुछ पुरंजन को समर्पित कर देती है। सभी लोग अभिषेक वदिका की ओर जाते हैं । इस अङ्क को 'पुरंजनप्रसंजन' नाम से जाना गया है।

इस नाटक का दूसरा अङ्क 'पुरंजन रंजन' नाम से जाना जाता है। इस अङ्क में राजा जो मृगयाविनोडी है, वापस आने पर रानी पुरंजनी को अस्वस्थ पाता है। बाद में दोनों सदोदन देश में प्रवेश करते हैं और उसके विभ्राजितदेश और सुवासित देश का निरीक्षण करते हैं। तत्पश्चात दक्षिण पांचाल देश और उत्तर पांचाल देश का गुणगान करते हैं।

इस नाटक के तीसरे अङ्क को 'पुरंजनगंजन' कहते हैं। इस अङ्क में सितपक्ष और चर का वार्तालाप होता है। चर उसे कुछ सूचनाएं देता है। राजा पुरंजन की स्त्री परवशत्ता का संकेत भी सितपक्ष करता है । राजा, देवी ओर सेनापति की बातचीत होती है । देवी राक्षसी के विषय में शंका प्रकट कर राजा का परित्याग कर देती है। राजा क्षुब्ध हो जाते हैं । नेपथ्य में प्रज्वार और कालकन्यका के भाई यवनेश की उपस्थिति सूचित की जाती है। राजा अपने पद की प्राप्ति के लिए अन्य पुर की तलाश करता है।

इस नाटक का चौथा अङ्क 'पुरंजनसमंजन' है । इस अङ्क के शुरूआत में अविज्ञात और विलक्षण वार्तालाप करते हैं। फिर नवलक्षणा और अविज्ञात में भक्तिपूर्ण चर्चा होती है । तत्पश्चात अमितलक्षणा के साथ वैदर्भी रूप में पुरंजन

रङ्गमंच पर प्रवेश करता है । वैदर्भी चिता बनाकर अपने खोए हुए पति के लिए उसमें जलना चाहती है तभी नवलक्षणा आ जाती है और बताती है कि तुम्हारे प्रिय तरंगिणी के पार हैं और उसे पूँछ पकड़ कर पार करने को कहती है।

इस नाटक के पांचवें अङ्क का नाम 'पुरंजनदु:खभंजन' है। वैदर्भी भगवान कृष्ण की स्तुति करते हुए नवलक्षणा से बात करती है । सुरोचन और अविज्ञातलक्षण पुरंजन का प्रवेश कराते हैं। पुरंजन का परम कल्याण नवधाभक्ति के द्वारा होता है और भरत वाक्य के साथ नाटक की समाप्ति होती है।

जीवसंजीविनी नाटकम्

20वीं शताब्दी में रचित 'जीवसंजीविनी नाटक' के रचयिता श्री वेंकटरमणाचार्य हैं।[43] कई दृश्यों में विभाजित यह नाटक पांच अङ्कों का है। पहले अङ्क में छह दृश्य , दूसरे अङ्क में व तीसरे अङ्क में पांच, चौथे तथा पांचवें अङ्क में तीन तीन दृश्य हैं ।

पात्र तालिका

सामान्य पात्र

1. सूत्रधार

---

43. सूत्रधार - तस्मात् श्री वेंकटरमणाचार्येण नूतनतया विरचितम् आयुर्वेदवस्तु विराजितं 'जीवसंजीविनी' नाम नाटकम् अभिनीय सामाजिकानां मनोरंजनमंजसा सम्पादयाव: ।

— प्र0 अ0, प्रस्तावना, पृ0 12

2. नटी

3. सुमंगला

4. चेटी

पुरुष पात्र

1.	कथानायक	–	जीवदेव
2.	वृद्धब्राह्मण	–	परेश
3.	जीवदेवका पिता	–	प्रद्योत
4.	जीव देव का सखा	–	प्रिय देव
5.	प्रद्योत का मंत्री	–	विभावसु
6.	परेश सखा	–	सत्यप्रिय
7.	नायक – श्वसुर	–	कलानिधि
8.	सहाध्यायी	–	तच्छिष्या
9.	सत्यलोकाधिपति	–	ब्रह्मा
10.	नायक के विद्या गुरू	–	सर्वज्ञगुरू

पुरुष पात्र

11.	कलानिधि मंत्री	–	कुमुदबन्धु
12.	ब्रह्मा का पुत्र	–	दक्ष
13.	ब्रह्मा की सवारी	–	राजहंस
14.	ब्रह्म रूप	–	स्वयंभू
15.	ब्राह्मण	–	देवयाजी
16.	महर्षि	–	विश्वामित्र
17.	सोमरूप	–	चन्द्र
18.	सूर्य रूप	–	पूषा
19.	रूद्ररूप	–	भग
20.	ईश्वर रूप	–	भैरव
21.	अमराधिपति	–	इन्द्र
22.	अश्विनी कुमार	–	दस्त्रौ
23.	वैद्यशास्त्रकर्ता	–	चरकसुश्रुतौ
24.	ऋषि	–	कश्यपभरद्वाजात्रेया

25. दूत - शीघ्र गामी

26. जीवदेवपुत्र - ज्ञानसूर्य

27. सामाजिक सेवक इत्यादि - अन्य पुरोहित पौर

28. कलानिधि पुत्र - सुधांशु

स्त्री पात्र

1. परेश भार्या - महामाया
2. प्रद्योत भार्या - प्रभावती
3. कलानिधि पत्नी - चन्द्रिका
4. ब्रह्मा भार्या - वाणी
5. शान्ति प्रभा की माता - सुप्रभा
6. ज्ञानसूर्य की पत्नी - शान्ति प्रभा
7. संजीविनी की सहेलियां - सख्य
8. संजीविनी की प्रिय सखी - लीलावती
9. राजा जीव देव की पत्नी - संजीविनी
10. मंत्री कुमुदबन्धु की पत्नी - प्रियदेवी

11. मंत्री कुमुद चन्द्र की पत्नी - कुमुद वती

इस नाटक के पहले अंङ्क की शुरूआत नान्दी से होती है। सूत्रधार और नटी द्वारा हेमन्त ऋतु का वर्णन प्रस्तावना में किया गया है। इस अङ्क के दूसरे दृश्य में सत्यप्रिय, परेश व महामाया का सम्भाषण ब्रह्मलोक में होता है । भू-लोक में तेजोवती नगरी के मार्ताण्ड देश में प्रद्योत और प्रभावती से उत्पन्न पुत्र कथानायक जीवदेव का वर्णन है । इस अङ्क के तीसरे दृश्य में जीवदेव की विद्या की प्रवीणता को देखने के लिए महामाया और परेश स्त्री और पुरुष के रूप में सर्वज्ञगुरू के आश्रम में जाते हैं । जहाँ जीवदेव के द्वारा उस विद्या के बारे में बताया गया है जो अभ्यास की गयी है। इसके बाद जीवदेव को मुक्ति का आर्शीवाद देकर महामाया और परेश अन्तरधाम हो जाते हैं । जीवदेव उनके स्वरूप के बारे में बताता है।

चौथे दृश्य में सत्यलोक में ब्रह्मसभा का वर्णन है। वहां ब्रह्मा और वाणी का मधुर वार्तालाप होता है। भूलोक के कुमुददेश में चन्द्रवंशीय कलानिधि और चन्द्रिका से उत्पन्न संजीविनी नामक कन्या का वर्णन है । संजीविनी कथानायिका भी है। यहां पर संजीविनी को औषधिविशेष मानकर नायिका के रूप में निरूपित किया गया है। और संजीवनी के जीवदेव को स्पर्श करने से ही सभी रोगों के दूर होने की बात कही गयी है। पांचवें दृश्य में संजीविनी भी अपनी सीखी हुई विद्या के बारे में बताती है। छठवें दृश्य में ब्रह्मा और वाणी की अनुमति से दक्ष आयुर्वेद के रहस्य का उपदेश अश्विनी कुमार को देता है।

नाटक के दूसरे अङ्क में राजा इन्द्र के द्वारा अश्वनी कुमार का अभिनन्दन किया जाता है। फिर शची के प्रार्थना पत्र पर अश्विनी कुमारों का स्त्रियों के प्रसव

रोग की चिकित्सा के प्रति ध्यान आकृष्ट कराया गया है। दूसरे दृश्य में चन्द्र की राजयक्ष्मा, भग के नष्ट हो जाने पर उसकी चिकित्सा के प्रति ध्यान आकर्षित किया गया है। स्वयंभू के कटे सिर को भी संजीवनी औषधि से ठीक कराया गया है।

तीसरे दृश्य में कश्यप, भरद्वाज, आत्रेय आदि महर्षियों का सम्भाषण आत्रेय एवं भरद्वाज द्वारा आयुर्वेद संहिता के बनाने की वार्ता, विश्वामित्र से चरक इत्यादि आयुर्वेद शास्त्र के निर्माण का उल्लेख किया गया है। चौथे दृश्य में उद्यान वन में जीवदेव एवं प्रियदेव के सम्भाषण के अवसर पर शुद्ध वायु के उद्देश्य पर विचार किया गया है। स्नातक को कन्यावरण करने का पूरा अधिकार देने का उल्लेख किया गया है। पांचवें दृश्य में भुवनेश्वरी मंदिर में संजीवनी एवं प्रिय देवी को देवी का आशीर्वाद मिला हुआ है।

नाटक के तीसरे अङ्क के प्रथम दृश्य में संजीवनी विवाह योग्य हो गयी है। एवं जीवदेव उसके अनुरूप पति हैं - इसकी सूचना संजीविनी के माता पिता को मिलती है। संजीविनी का चित्र प्रद्योत राजा के पास भेजा जाता है। दूसरे दृश्य में प्रद्योत दम्पत्ति चित्र पसंद करते हैं एवं जीवदेव को चित्र दिखाया जाता है। वह संजीवनी को देखना चाहता है । उनके मिलने का स्थान ज्योत्स्नानगर प्रान्तोद्यान निश्चित किया जाता है और यह सब वृत्तान्त प्रद्योत के यहाँ से कलानिधि के पास भेज दिया जाता है। तीसरे दृश्य में जीवदेव प्रियदेव के साथ उसी उद्यान में जाता है। दोनों का अपनी होने वाली पत्नी से मिलन होता है। फिर उन लोगों का पुष्प माला के द्वारा गान्धर्व विवाह सम्पन्न हो जाता है। जीवदेव एवं प्रियदेव आपस में मिलने के बाद अपने नगर की ओर लौट जाते हैं। संजीविनी प्रिय देवी भी ज्योत्सना नगर में प्रवेश करती हैं। चौथे दृश्य में दोनों ओर के राजा मंत्रियों को विवाह की तैयारी

की आज्ञा देते हैं। पांचवें दृश्य में शास्त्रविधि से दोनों युगल का विवाह सम्पन्न हो जाता है।

इस नाटक के चौथे अङ्क के पहले दृश्य में संजीविनी को पुत्र की प्राप्ति होती है एवं उसका नामकरण संस्कार किया जाता है । संजीविनी के पुत्र का नाम ज्ञानसूर्य रखा जाता है। दूसरे दृश्य में जीव देव रोग से ग्रसित हो जाता है। उसका परिहार संजीवनी द्वारा होता है । तीसरे दृश्य में अर्श, पाण्डु, राजयक्ष्मा, कर्णशूल, नेत्र रोग इत्यादि रोगों का इलाज संजीविनी द्वारा कराया जाता है।

इस नाटक के पांचवें अङ्क के पहले दृश्य में संजीविनी अपने पुत्र ज्ञानसूर्य से अपनी अनुपस्थिति का कारण अपने पति जीवदेव की बीमारी को बताती है । फिर ज्ञानसूर्य को देखने के लिए चन्द्रिका एवं कलानिधि तेजोवती नगरी में जामाता के घर जाते हैं। उसी समय प्रद्योत वानप्रस्थाश्रम में जाने की बात सोचते हैं। इसमें कलानिधि ने भी अपनी सम्मति दे दी। दूसरी ओर शान्तिप्रभा एवं ज्ञानसूर्य के मध्य विवाह की बात सोची जाती है । दूसरे दृश्य में कुछ समय तक राज्य करके जीवदेव ने भी ज्ञानसूर्य का राज्याभिषेक कर दिया। ज्ञानसूर्य एवं शान्ति का श्रृंगारपूर्ण परस्पर वार्तालाप होता है। तीसरे दृश्य में संजीविनी राज्यभार ज्ञानसूर्य को देकर वनवास करने का उपदेश जीवदेव को देती है। वह कहती है कि वनवास ही जीवन्मुक्ति का परम साधन है एवं जीवदेव ने कहा कि गृहस्थ आश्रम ही सर्वश्रेष्ठ आश्रम है। इस तरह जीवदेव एवं संजीविनी का वार्तालाप चलता रहता है। अंत में जीवदेव ने संजीविनी की बात मान ली। इसके पश्चात ज्ञानसूर्य का अभिषेक करके पुरोहितों के आशीर्वाद को प्राप्त किया । इस प्रकार भरत वाक्य से नाटक की समाप्ति होती है।

पंचम अध्याय

प्रबोधचन्द्रोदय नाटक

पंचम अध्याय

प्रबोधचन्द्रोदयः नाटक

कथावस्तु का वैशिष्ट्य

इस नाटक की विशिष्टता है कि प्रतीक नाटक की टूटी हुई कड़ी को इसने पुनः संयोजित कर दिया। प्रबोधचन्द्रोदय एक विशिष्ट, पूर्ण रूप से उपलब्ध एक प्रथम प्रतीक नाटक है। यह नाटक नाट्यशास्त्रीय परिभाषा के अनुरूप है। इसकी कथावस्तु का क्षेत्र आध्यात्मिक है। प्रतीक नाटक की कथावस्तु, पात्र, रस एवं भाषा शैली इत्यादि का इस नाटक में बहुत समीचीन वर्णन किया गया है। इस नाटक की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि इसकी कथावस्तु के प्रतिपाद्य विषय आध्यात्मिक एवं मानसिक हैं। इस नाटक में मानसिक अंतर्द्वन्द्वों का आध्यात्मिकता के प्रकाश में चित्रण किया गया है। इसकी कथावस्तु किसी पौराणिक या मानव विशेष के सुख दुःख की लौकिक कथा का केवल उल्लेख मात्र नहीं है। अपितु सम्पूर्ण मानव मात्र के मन में होने वाले अन्तर्द्वन्द्व का प्रतीक पात्रों के माध्यम से स्पष्ट एवं भव्य चित्रण किया गया है। नाटककार का उद्देश्य धर्म, दर्शन एवं आत्मा के मोक्ष इत्यादि तात्त्विक पदार्थों का चित्र प्रस्तुत करना एवं उसका उचित समाधान करना ही दिखलाई पड़ता है। हालाँकि इसमें दार्शनिक शुष्कता नहीं आ पाती है। इसमें भी सामान्य लौकिक कथा की तरह सहृदय अपने को आनन्द लेता हुआ दिखाई पड़ता है। श्री कृष्ण मिश्र ने भावनाओं का परस्पर पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित करना एवं सौतेला भाई इत्यादि का सम्बन्ध प्रदर्शित कर परस्पर वाद विवाद एवं कलह पैदा

करना, इस नाट्य कृति में दिखायाहै, जो सामान्य परिवेश में भी दृष्टिगोचर होता है। इसे लेखक ने बडे रोचक ढंग से वर्णित किया है। यह लेखक की अपनी मौलिकता दी है। इस नाटक के आधार पर परस्पर पारिवारिक सम्बन्ध को इस प्रकार दिखाया जा सकता है । जैसे पुरुष की पत्नी माया के संयोग से मन नाम के पुत्र की उत्पत्ति होती है। मन की दो पत्नियाँ प्रवृत्ति तथा निवृत्ति हैं। पहली पत्नी प्रवृत्ति से महामोह तथा दूसरी पत्नी निवृत्ति से विवेक नाम के पुत्रों की प्राप्ति होती है। महामोह विवेक का सौतेला भाई है। फिर विवेक की पत्नी मति को कोई पुत्र नहीं उत्पन्न होता लेकिन दूसरी पत्नी उपनिषद् से प्रबोध एवं विद्या नाम के पुत्र व पुत्री का जन्म होता है। महामोह की पत्नी का नाम मिथ्यादृष्टि है। इस तरह परस्पर पिता पुत्र आदि सम्बन्धों की स्थापना करके अमूर्त्त भावनाओं का मूर्त्त रूप में रोचक वर्णन होता है । विवेक एवं महामोह सदृश विरोधी अमूर्त्त भावों में परस्पर घोर संघर्ष दिखाना पूर्ण मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करता है। साधारणतया संसार में देखा जाता है कि सत् भावना की विजय होती है। असत् भावना की पराजय होती है। इसी तथ्य को प्रबोधचन्द्रोदय नाटक में अमूर्त्त भावनाओं को मूर्त्त रूप देकर सरल ढंग से सहृदय सामाजिक के समक्ष प्रतिस्थापित किया गया है। इस संघर्ष का अंत आनन्दमय मोक्ष में होता है।

इस नाटक में प्रस्तुत में अप्रस्तुत की झलक दिखलाई पड़ती है । प्रबोधचन्द्रोदय के प्रारम्भ में प्रस्तावना में नाटककार के आश्रयदाता, उसके संघर्ष एवं विजय प्राप्त करने का अप्रस्तुत वर्णन किया गया है।[1]

---

1. प्रबोधचन्द्रोदय, अंङ्क - 1, प्रस्तावना, श्लोक 4 और 9

पूरे नाटक के अध्ययन से इस प्रकार का अनुमान होता है कि प्रस्तुत पुरुष ही अप्रस्तुत कीर्ति वर्मा को तथा प्रस्तुत विवेक के चरित्र का आरोप अप्रस्तुत मंत्री गोपाल में किया गया हो एवं प्रस्तुत महामोह के चरित्र का आरोप शत्रु कर्ण में आरोपित किया गया हो। ऐसा मालूम होता है कि गोपाल मंत्री के द्वारा कर्ण को हराकर कीर्ति वर्मा का राज्याभिषेक किया गया हो। इस अप्रस्तुत वर्णन का आरोप विवेक के द्वारा महामोह आदि को पराजित कर पुरुष (जीवात्मा) का राज्य (प्रबोधरूपब्रह्माकारवृत्ति) को प्राप्त कराने में है। इस तरह कथावस्तु की आध्यात्मिकता, अमूर्त्त भावों का मूर्त्तिकरण तथा प्रस्तुत में अप्रस्तुत की झलक आदि इस नाटक की प्रमुख विशिष्टतायें है।

कथावस्तु के प्रमुख रूप से दो प्रकार होते हैं।[2]

1. **आधिकारिक** (मुख्य वस्तु)

2. **प्रासंगिक** (गौण कथावस्तु)

---

2. (क) इतिवृत्तं द्विधाचैव .... ।

.... नाट्यशास्त्र,अध्याय 19, श्लोक 2

(ब) वस्तु च द्विधा ....।

दशरूपक, प्रथम प्रकाश, कारिका 11

इसी प्रकार प्रासंगिक कथा के दो भेदों[3] **पताका** एवं **प्रकरी** का वर्णन मिलता है।

प्रबोधचन्द्रोदय नाटक में राजा विवेक की कथा आधिकारिक या मुख्य कथा है। राजा विवेक इसमें नायक है और विवेक से महामोह के संघर्ष का इसमें वर्णन है। अंत में विवेक ही विजयी होता है और फल का अधिकारी भी वही होता है। इस नाटक की कथावस्तु में 'पताका' के रूप में विष्णुभक्ति की कथा है क्योंकि विष्णुभक्ति विवेक की रक्षा हेतु विपक्षी महामोह के सहायकों से अनेक बार प्रयत्न करती है। इस प्रकार नाटक में बराबर यह कथा चलती रहती है। प्रासंगिक कथा का दूसरा भेद 'प्रकरी' नाम से जाना जाता है। प्रकरी उसे कहते हैं जो वस्तु, कथा, काव्य या नाटक में कुछ काल तक चलकर रुक जाती है। इस नाटक में सरस्वती की कथा प्रकरी है। कारण स्पष्ट है कि पांचवें अङ्क में रंङ्गमंच पर मन को शान्त करने के लिए सरस्वती का प्रवेश होता है और उसी अंङ्क के अंत में 'प्रबोधोदय' की ओर मन को अग्रसर करके वह अंत में प्रस्थान कर जाती है। उल्लिखित विशेषताओं के अलावा प्रबोधचन्द्रोदय नाटक में नाट्यशास्त्रानुसार अवस्थाओं, अर्थ प्रकृतियों और संन्धियों का यथोचित प्रयोग हुआ है।

प्रबोधचन्द्रोदय नाटक में अवस्था

इस नाटक में 1. आरम्भ 2. यत्न, 3. प्राप्त्याशा, 4. नियताप्ति और फलागम 5. अवस्थायेंत्री हैं । इन पांचों अवस्थाओं का सुन्दर ढंग से विन्यास किया गया है।

---

3. दशरूपक, प्रथम प्रकाश, कारिका 19

आरम्भ नामक अवस्था किसी भी फल प्राप्ति के लिए उत्सुकता मात्र कही जाती है।[4] इस नाटक में यह आरम्भ नामक अवस्था प्रथम अङ्क के 'एवं दीर्घतर निद्रा-विद्रावित प्रबोधपरमेश्वरे कथं प्रबोधोत्पत्तिर्भविष्यति' इस वाक्य में है, क्योंकि 'प्रबोधोदय' रूप फल के प्रति नायिका मति की उत्सुकता मात्र अभिव्यक्त होती है। तत्पश्चात् प्रयत्न की नाट्यशास्त्र में परिभाषा इस प्रकार दी गयी है- फल की प्राप्ति न होने पर उसके लिए किए गये अत्यन्त त्वरायुक्त व्यापार को यत्न कहते हैं।[5] प्रयत्न नामक यह अवस्था नाटक के तीसरे अङ्क में शान्ति के माध्यम से श्रद्धा की खोज में है, क्योंकि नायक विवेक के पक्ष से शत्रु मोहराज को परास्त करके 'प्रबोध' रूप फल की प्राप्ति के लिए इस व्यापार को त्वरा के साथ सम्पन्न किया गया है। तीसरी अवस्था के रूप में प्राप्त्याशा कही गयी है। जिसकी परिभाषा करते हुए कहा गया है कि जहाँ पर प्राप्ति की आशा, उपाय तथा विघ्न की आशंकाओं से घिरी हो, परन्तु

---

4. (क) औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे

- दशरूपक प्रथम प्रकाश कारिका - 20

(ख) भवेदारम्भ औत्सुक्यं यन्मुख्यफलसिद्धये

- साहित्य दर्पण, षष्ठ परिच्छेद, कारिका, 71

5. (क) प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः

- दशरूपक प्रथम प्रकाश, कारिका 20

(ख) प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारो तित्वरान्वितः

- साहित्य दर्पण षष्ठ परिच्छेद, कारिका 72

प्राप्ति की संभावना हो उसे प्राप्त्याशा नामक अवस्था कहते हैं।[6] यथा इस नाटक में विष्णु भक्ति को कापालिक द्वारा फल का साधन बतलाना, विष्णु भक्ति द्वारा श्रद्धा की रक्षा करना तथा उसकी आज्ञा से विवेक के सुसज्जित अपने सहयोगियों के साथ काशी में पहुँच जाने के बाद उसी के द्वारा विवेक के विषय में अनिष्ट और पराजय आदि की आशंका होना 'प्राप्त्याशा' नामक अवस्था है। 'नियताप्ति' चौथी अवस्था है। जब विघ्न के अभाव में प्राप्ति निश्चित हो जाती है तो उसे 'नियताप्ति' कहते हैं।[7] इस नाटक में विवेक की विजय के बाद सरस्वती का मन को उपदेश देना और मन का वैरागी होना आदि 'नियताप्ति' है, क्योंकि 'प्रबोधोदय' रूपफल की प्राप्ति इससे निश्चत हो जाती है ।

---

6. (क) उपायापायशंकाभ्यां प्राप्त्याशाप्राप्तिसम्भवः

- साहित्य दर्पण षष्ठ परिच्छेद, कारिका 72

(ख) उपायापायशंकाभ्यां प्राप्त्याशाप्राप्तिसम्भवः

- दशरूपक, प्रथम प्रकाश, कारिका , 21

(ग) ईषत् प्राप्तिर्यदा का्चित् फलस्य परिकल्प्यते

भावमात्रेण तं प्राहुर्विर्धिज्ञाः प्राप्तिसम्भवः

- नाट्यशास्त्र, अध्याय 19 , श्लोक 74

7. (क) अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिताः

- दशरूपक, प्रथम प्रकाश, कारिका 21

(ख) अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिस्तु निश्चिता

- साहित्य दर्पण, षष्ठ परिच्छेद, कारिका 73

'फलागम' पांचवी अवस्था का नाम है । सम्पूर्ण फल की प्राप्ति होने की अवस्था ही फलागम है । इसे ही फलयोग कहते हैं।[8] इस नाटक में मन के विषय से हट जाने पर पुरुष को ब्रहमस्वरूप का ज्ञान होना अर्थात् 'प्रबोधोदय' ही फलागम है।

प्रबोधचन्द्रोदय नाटक में अर्थ प्रकृति

अर्थ प्रकृतियां भी पांच हैं। 1. बीज 2. बिन्दु 3. पताका 4. प्रकरी 5. कार्य[9] इस नाटक में इनका भी पूर्ण रूप से विन्यास पाया जाता है।

---

8. (क) समग्रफल सम्पत्तिः फलयोगोयशोदितः

- दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ0 16,

(ख) सावस्था फलयोगः स्याधः समग्रफलोदय :

- साहित्य दर्पण षष्ठ परिच्छेद, कारिका 73

(ग) अभिप्रेतं समग्रं च प्रतिरूपं क्रियाफलम् ।

इतिवृत्ते भवेद्यस्मिन् फलयोगः प्रकीर्तितः

- नाट्यशास्त्र, अध्याय 19 श्लोक 13

9. (क) बीजविन्दुपताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणाः ।

अर्थप्रकृतयः पंच ता एताः परिकीर्तिताः ॥

- दशरूपक, प्रथम प्रकाश कारिका, 18

(ख) बीजं बिन्दुः पताका च प्रकरी कार्यमेव च ।

अर्थप्रकृतयः पंच ज्ञात्वा योज्या यथाविधिः ॥

- साहित्य दर्पण, षष्ठ परिच्छेद कारिका 64

बीज उस हेतु को कहते हैं जिसका पहले सूक्ष्म कथन हो किन्तु उसका विस्तार अनेक रूप में हो।[10] इस नाटक में काम के द्वारा अपनी पत्नी रति से विवेक एवं उपनिषद् देवी के संयोग से प्रबोधोदय् एवं विद्या के जन्य की चर्चा करने से प्रथम अंङ्क में ही इस बीज की उद्भावना हो जाती है । वस्तुतः विद्या की उत्पत्ति का कथन इस कथा का बीज तत्व है। इस तत्व से ही सभी कथानक विकसित होते हैं। विवेक प्रबोध एवं विद्या के उदय के लिए प्रयत्नशील हैं । उससे और मोह से संघर्ष होता है । इस प्रकार कथानक में इसी बीज से विस्तार पाता है।

---

10. (क) स्वल्पमात्रं समुत्सृष्टं बहुधा यद्विसर्पति ।

फलावसानं यच्चेव बीजं तत्परिकीर्तितम् ॥

– नाट्यशास्त्र, अध्याय 19, श्लोक 22

(ख) अल्पमात्रं समुदिष्टं बहुधा यद्विर्पति ।

फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजं तदभिधीयते ॥

– सा0 द0 षष्ठ परिच्छेद, का0 65

(ग) स्वल्पोद्दिदष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा ।

– दशरूपक, प्रथम प्रकाश, कारिका 17

किसी दूसरी कथा के विच्छिन्न होने पर भी प्रधान कथा के अविच्छेद का जो निमित्त है उसे बिन्दु कहा गया है।[11] इस नाटक के द्वितीय अंड्क में दम्भ एवं अहंकार के द्वारा महामोह के प्रबल प्रभाव की चर्चा करने से कथा के बीज का विच्छेदन हो जाता है। लेकिन जिस समय भयभीत अहंकार के द्वारा दम्भ से यह कहा जाता है कि मेरे राजा महामोह को महाभय उपस्थित हो गया है यह बीज का अवच्छेदक कारण 'विन्दु' नामक अर्थप्रकृति है, क्योंकि इससे मुख्य कार्य ज्ञात होता है।

प्रकरी एवं पताका का उल्लेख कथावस्तु के प्रभेद में ही किया जा चुका है।

---

11. (क) अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्

-दशरूपक, षष्ठ परिच्छेद, कारिका 65

(ख) अवान्तरार्थविच्छेदे विन्दुरच्छेदकारणम्

- सा0द0 षष्ठ परिच्छेद कारिका 66

(ग) प्रयोजनानांविच्छेदे यदविच्छेदकारणम् ।

यावत्समाप्तिर्बन्धस्य सः बिन्दुः परिकीर्तितः ॥

-नाट्यशास्त्र, अध्याय 19, श्लोक 23

पांचवीं अर्थप्रकृति का नाम कार्य है। जो प्रधान साध्य हो, जिसके लिए समस्त सामग्री एकत्रित की गई हो, उसे 'कार्य' कहते हैं।[12] इस नाटक के छठें अंक में पुरुष को प्रबोधोदय की सिद्धि होती है। उसी के लिए समस्त सामग्री एकत्रित की गई है। इसलिए यहाँ कार्य नामक अर्थप्रकृति है।

प्रबोधचन्द्रोदय में सन्धियाँ

पंचअवस्था एवं पंचअर्थप्रकृति के मिलन से पंचसन्धि का निर्माण होता है। यह पंचसंधियां क्रमशः मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श एवं निर्वहण हैं।[13] इन सबका रूचिर सन्निवेश इस नराटक में हुआ है। 'आरम्भ' नामक अवस्था से युक्त विभिन्न प्रकार के अर्थों एवं रसों को उत्पन्न करने वाली बीज की समुत्पत्ति को 'मुख' संधि

---

12. (क) यदाधिकारिकं वस्तु सम्यक प्राज्ञै प्रयुज्यते ।
तदर्थो यः समारम्भस्तकार्य परिकीर्तितम्
–नाट्यशास्त्र, अध्याय 19, श्लोक 26

(ख) अपेक्षितं तु यत्साध्यमारम्भो यन्निबन्धनः
समापनं तु यत्सिद्धयै तत्कार्यमिति संमतम्
– साहित्य दर्पण कारिका, 69–70, षष्ठ परिच्छेद

13. (क) मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्श उपसंहृतिः
–साहित्य दर्पण षष्ठ परिच्छेद, कारिका, 75

(ख) मुखप्रतिमुखं गर्भः सावमर्शोपसंहृति
–दशरूपक, प्र0 प्रकाश, कारिका 23

कहते हैं।[14] नाटक के पहले अङ्क में मति का कथन है – 'प्रबोधोत्पत्तिर्भविष्यति' इस वाक्य से सूचित 'आरम्भ' अवस्था तथा प्रथम अंङ्क में ही रति के 'अस्माकं कुले कालरात्रिकल्पा विद्यानाम राक्षसी समुत्पत्स्यते' रति के इस कथन में 'बीज' के संयोग से मुख सन्धि का निर्माण हुआ है।

उपरोक्त बीज का कभी दिखाई देना और कभी दिखाई न देना इस लक्ष्यालक्ष्य के रूप में बीज का उद्भिन्न होना 'प्रतिमुख' सन्धि है।[15] इसका निर्माण 'बिन्दु' और 'यत्न' के संयोग से होता है। इस नाटक के द्वितीय और तृतीय अडंक में मोह, क्रोध,

---

14. (क) मुखं बीज समुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा

–दशरूपक, प्रथम प्रकाश, कारिका 24

(ख) यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नार्थरससम्भवा
प्रारम्भेण समायुक्ता तन्मुखंपरिकीर्तितम्

– साहित्य दर्पण, षष्ठ परिच्छेद कारिका 76

(ग) यत्र बीज समुत्पत्तिर्नानार्थ रससम्भवा
काव्यं शरीरानुगता तन्मुखं परिकीर्तितम् ।

– नाट्यशास्त्र अध्याय 19, श्लोक 19

15. (क) लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत

–दशरूपक, प्रथम प्रकाश, कारिका 30

(ख) फलप्रधानोपायस्य सुखसन्धि निवेशिनः
लक्ष्यालक्ष्य इवोद्भेदो यत्रः प्रतिमुखं च तत्

–साहित्य दर्पण षष्ठ परिच्छेद् कारिका 77

(ग) बीजस्योद्घाटनं यत्र दृष्ट नष्ट मिवक्वचित्
मुखन्यस्तस्य सर्वत्र तद्वै प्रतिमुखं स्मृतम्

– नाट्यशास्त्र अध्याय 19, श्लोक 40

अहंकार आदि विरोधियों के अत्यन्त प्रभाव का वर्णन है, तो कहीं कहीं नायक विवेक के प्रबल प्रयत्नों का चित्रण है। इस तरह प्रबोधोदय रूपफल कहीं अलक्ष्य और कहीं लक्ष्य होने से यहां 'प्रतिमुख' सन्धि है।

बीज के दृष्ट होने के बाद पुनः नष्ट हो जाने पर बार बार अन्वेषण किया जाना ' गर्भ ' सन्धि है।[16]

फल को भीतर रखने की वजह से इसे गर्भ संधि कहते हैं। यह पताका नामक अर्थप्रकृति और प्रत्याशा नामक अवस्था के योग से बनती है। इस नाटक में 'गर्भ' संधि का निर्माण तृतीय अंङ्क से पांचवें अंङ्क के प्रारम्भ तक है । तीसरे अंङ्क में विष्णु भक्ति का पताका रूप वृत्तान्त के प्रारम्भ होने पर ही इस संधि का

---

16. (क) गर्भस्तुदृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः

- दशरूपक प्रथम प्रकाश कारिका 36

(ख) फलप्रधानोपायस्य प्रागुद्भिन्नस्य किंचन

गर्भोयत्र समुद्भेदो ह्वासान्वेषणान्मुहः

- साहित्य दर्पण, षष्ठ परिच्छेद कारिका 78

(ग) उद्भेदस्तस्य बीजस्य प्राप्तिरप्राप्तिरेव वा

पुनश्चान्वेषणं यत्र स गर्भं इति स्मृतः

- नाट्यशास्त्र अध्याय 19, श्लोक 41

आरम्भ हो जाता है। चौथे अंङ्क में विवेक अपनी विजय के लिए प्रयास करता है। इस प्रकार प्राप्त्याशा की स्थिति पांचवें अंक के प्रारम्भ तक है। (क्रोध , व्यसन या लोभ से जहाँ फल की प्राप्ति के विषय में विचार किया जाय तथा जिसके 'बीज' को 'गर्भ' संधि के द्वारा प्रकट किया गया हो उसे विमर्श संधि कहते हैं।[17] यह 'प्रकरी ' अर्थ प्रकृति और 'नियताप्ति' अवस्था के योग से बनती है।

इस नाटक में विष्णु भक्ति के द्वारा प्रेषित सरस्वती के द्वारा उपदिष्ठ मन का प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर बढना फल की उपलब्धि के नियत हो जाने से 'नियताप्ति' अवस्था है। सरस्वती के उपदेश से मन के अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करना, गर्भ संधि के द्वारा बीज का प्रकट होना है। सरस्वती प्रसंग का वर्णन 'प्रकरी' रूप में होने से यहाँ विमर्श सन्धि है।

---

17. (क) क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्

गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सो वमर्शः इतिस्मृतः

- दशरूपक प्रथम प्रकाश कारिका 43

(ख) यत्र मुख्यफलोपाय उद्भिनोगर्भतोऽधिकः

शापाद्यैः सान्तरायश्च स विमर्श इति स्मृतः ।

- साहित्य दर्पण षष्ठ परिच्छेद

(ग) गर्भनिमित्र बीजार्थौ विलोभन कृतोडथवा

क्रोध व्यसनयो वापि स विमर्श इति स्मृतः

- नाट्यशास्त्र, अध्याय 19 श्लोक 42

पांचवी सन्धि 'निर्वहण' है। जहां बिखरे हुए बीज के सहित मुखादि अर्थ, एक अर्थ में एकत्रित कर दिऐ जाते हैं उसे निर्वहण सन्धि कहते हैं।[18] यह 'कार्य' नामक अर्थप्रकृति एवं 'फलागम' अवस्था के समन्वय से बनती है । षष्ठ अंङ्क में विवेक की विजय से लेकर 'प्रबोधोदय ' रूप कार्य की सिद्धि पर्यन्त निर्वहण सन्धि है।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि श्री कृष्ण मिश्र ने नाट्यशास्त्र के अनुसार अवस्था, अर्थप्रकृति और सन्धियों का पूर्णरूप से निर्वाह किया है।

पात्रों की दृष्टि से विशिष्टता :

प्रबोध्र चन्द्रोदय नाटक में पूर्ण मनोवैज्ञानिक ढंग से पात्रों का चरित्र चित्रण

---

18. (क) बीजवन्तो मुखाद्यार्था विप्रकीर्णा यथायथम्

एकाथ्र्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्

- दशरूपक प्रथम प्रकाश कारिका - 48

(ख) बीजवन्तो मुखाद्यार्था विप्रकीर्णा यथायथम

एकाथ्र्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्

- साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद,

(ग) समानयनमर्थानां मुखाधानां सबीजिनाम् ।

नानाभावन्तराणां यद्भवेन्निर्वहणै हि तत् ॥।

- नाट्यशास्त्र, अध्याय 19, श्लोक 43

किया गया है विवेक यहाँ नायक है और उपनिषद् मति आदि उसके परिवार के अन्य सदस्य हैं । वैशिष्टय अमर्त्त का मूर्त्तीकरण ही पात्रों में प्रमुख है। प्रतीक नाटकों की मुख्य विशेषता मनुष्य की तरह अमूर्त भावनाओं को रंगमंच पर लाना और उनमें पारस्परिक वार्तालाप कराना और उन्हीं के माध्यम से आध्यात्मिकता का प्रतिपादन कराना है।

भाषा शैली की दृष्टि से विशिष्टता

प्रबोधचन्द्रोदय नाटक की भाषा भावगम्य, चित्ताकर्षक, सरल एवं सरस है। वही भाषा सशक्त है जो दूसरों के मन तक हमारे मन की बात पहुँचाए तथा उसको अपने में आत्मसात करने की शक्ति रखे। प्रबोधचन्द्रोदय नाटक की भाषा भी अपनी अमिट छाप छोड़ती है। इसके रचनाकार श्री कृष्ण मिश्र का भाषा पर पूरा अधिकार था। इस कारण वे प्रभावपूर्ण ढंग से तथा सरल, सरस व गतिशील भाषा के माध्यम से अध्यात्मिक तत्त्व का प्रतिपादन कर सकने में समर्थ हुए हैं । भाषा प्रसादगुण से युक्त है। साथ ही उसमें माधुर्य भी है, और ओज[19] का भी पुट भाषा की गौरववृद्धि के रूप में हुआ है। वैदर्भी रीति का विशेष प्रयोग है।[20]

---

19. अद्याम्युन्यमयातुधानतरूणी चंचत्करास्कालन

व्यावल्गन्नृकपालरतालरणितैर्नृत्यत्पिशांगनाः ।

उद्गायन्ति यशांसि यस्य विततैर्नादैः प्रचण्डानिल

प्रक्षुभ्यत्करिकुम्भकूटकुछरव्यक्तै रणक्षोणयः

– प्रबोधचन्द्रोदय 1-5

20. द्रष्टव्य -प्र0 च0, अङ्क 3, श्लोक 11, पृ0 110 ।

गौणी रीति का प्रयोग भी कहीं कहीं हुआ है। धर्मदर्शन का प्रतिपादन सरल और सरस भाषा में किया गया है। नाटक में कहीं भी जटिलता, अस्पष्टता और नीरसता नहीं आने पायी है। नाटक के भाषा की समास शैली भी अधिक जटिल नहीं है। जिससे अर्थ समझने में कोई कठिनाई हो । प्रसंग के अनुसार भाषा का प्रयोग हुआ है। जैसे गोपाल के पराक्रम का वर्णन करते हुए नाटककार गौणी रीति और समास बहुल शैली का सहारा न लेता तो उसके पराक्रम के सम्बन्ध में इतनी सुन्दर अभिव्यंजना न होती।

प्राकृत भाषा का भी प्रसंगानुसार अत्यधिक प्रयोग हुआ है। इसका प्रयोग गद्य और पद्य दोनों में हुआ है। साधारण पात्रों से प्राकृत में तथा उच्च पात्रों से संस्कृत में बात कराई गयी है। भाषा पर लेखक का अधिकार इस तरह बन पड़ा है कि उन्होंने गंभीरतम भावों को भी अत्यन्त सरलतम ढंग से सर्वग्राही बना दिया है अर्थात भाषा की द्रष्टि से श्रीकृष्ण मिश्र की यह कृति बिल्कुल खरी उतरती है।

इस नाटक में शैली की दृष्टि से भी अनेक विशेषताएं दृष्टिगत होती हैं। अलंकारों का प्रयोग भी विधिवत हुआ है। रूपक उपमा, अपह्नुति, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, विशेषोक्ति, समासोक्ति और दीपकालंकार आदि का प्रयोग अच्छी प्रकार से किया गया है।

दीपक अलङ्कार का प्रयोग प्रथम अङ्क के सत्ताइसवें श्लोक में देखने योग्य है। [21] कहीं कहीं अंतःकथाओं का सन्निवेश हो जाने से शैली की शोभा बढ़ जाती है। प्रथम अंङ्क में परशुराम की प्रशंसात्मक उक्ति सूत्रधार के द्वारा कही गयी है। सूक्ष्मभाव से युक्त सूक्तियों का प्रयोग भी कहीं कहीं दृष्टव्य है। परस्पर वैर से कुलों का नाश आसानी से हो जाता है । जैसे — वृक्ष की दो शाखाओं के घर्षण से अग्नि द्वारा सम्पूर्ण वन भस्मसात हो जाता है।[22] नाटककार का भाषा शैली पर पूर्ण अधिकार इस रूप में भी प्रदर्शित होता है कि उन्होंने सूक्ष्म गम्भीर भावों को कई सूक्तियों में व्यक्त करके बरबस ही पाठक के हृदय को मुग्ध कर लिया है । साथ ही विशिष्ट छन्दों का भी उन्होंने प्रयोग किया है। जिससे शैली चमत्कृत हो गई है। नाटक

---

21. सम्मोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति
    निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति।
    एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नरायाम्
    किं नाम वामनयनन समाचरन्ति ॥

    प्रबोधचन्द्रोदय अंक 1, श्लोक 27

22. निर्दहति कुलविशेषं ज्ञातीनां वैरसंभवः क्रोधः ।
    वनमिव घनपवनाहततरूवरसंघट्टसंभवोदहनः ॥

    - प्रबोधचन्द्रोदय अंक 5, श्लोक 1

इस नाटक में शान्त रस ही आदि से अंत तक अपने उत्कर्ष पर है। इसके अतिरिक्त अन्य आठों रस भी जगह-जगह प्रयुक्त हुए हैं, परन्तु गौण रूप में हैं और अंग रूप में ही सुप्रयुक्त हैं। अङ्गी रस तो शान्त रस ही है । नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से शान्तरस का स्थायी भाव 'शम' माना गया है।[24] संसार की असारता का ज्ञान तथा परमात्मा के स्वरूप का परिज्ञान ही इसका आलम्बन विभाव है।[25]

सत्संग, तीर्थ, आश्रम व एकान्तवास आदि इसके उद्दीपन भाव कहे जा सकते हैं तथा दया, स्मरण, हर्ष तथा शरीर का पुलकित होना आदि संचारी भाव के अंतर्गत आते है।

नान्दी पाठ से ही इस नाटक में शान्तरस के स्थायीभाव 'शम' की जानकारी प्राप्त होती है। इस नाटक के शान्तरस प्रधान होने का स्पष्ट प्रतिभास प्रस्तावना में ही नट के इस वाक्य से होता है 'तद्वयं शान्तरसप्रयोगाभिनयेतात्मानंविनोदयितुमिच्छाम: इस तरह यथार्थ रूप में ब्रह्मानंद की प्राप्ति, आत्मिक विकास, धर्म और दर्शन आदि प्रतिपाद्य विषय होने के कारण निर्विवाद रूप से शान्तरस के प्रधानत्व की सिद्धि हो जाती है ।

---

24. शान्त: शमस्थायिभाव उत्तमप्रकृतिर्मत:

-साहित्य दर्पण, षष्ठ परिच्छेद, पृ0 24

मम्मटाचार्य ने अपने काव्यप्रकाश (पृ0 116) तथा पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने ग्रन्थ 'रस गंगाधर' (पृ0 32) में शान्तरस का स्थायीभाव 'निर्वेद' को स्वीकार किया है।

25. जिन लोगों ने 'निर्वेद' को शान्त रस का स्थायीभाव स्वीकार किया है उनके अनुसार इसका आलम्बन विभाव 'संसार' होगा ।

इस नाटक के शान्त रस का आलम्बन विभाव 'प्रबोधोदय' है। इसमें अमूर्त्त पात्र मन के अज्ञान (मोह) और ज्ञान (विवेक) का आपस में संघर्ष दिखाते हैं। जिसमें अंततः ज्ञान यानि विवेक विजयी होता है। प्रबोध की उत्पत्ति ज्ञानी मन के शान्त एवं वैरागी होने पर होती है। दूसरे और तीसरे अङ्क में काशी के आश्रमों और ब्राह्मणों का वर्णन, प्ररूपपात्रों चार्वाक, जैन, बौद्ध आदि के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या, मन्दारपर्वत, कुरूक्षेत्र तथा संसार की असारता दिखाना और छठवें अंक की दार्शनिक चर्चा आदि उद्दीपन विभाव है । स्थायी 'शम' में क्षण प्रतिक्षण उन्मग्र, दया, हर्ष आदि संचारी भाव हैं। पुरूष (ब्रह्म का अंशभूत) आत्मा इसका आश्रय है। प्रबोधोदय के बाद ब्रह्मानन्द का आस्वाद रूप आनन्द को यही प्राप्त करता है। इस तरह से अनुभाव, विभाव व संचारी भावों से पुष्ट होकर नाटक के अंत में स्थायी भाव 'शम' शान्तरस का रूप धारण करता है ।

गौण रस

प्रबोधचन्द्रोदय नाटक में अङंग रूप में करूण, वीर, श्रृंगार, अद्भुत, हास्य, वीभत्स व रौद्र आदि रसों का भी प्रयोग हुआ है। अन्य रसों की अपेक्षा इस नाटक में श्रृंगार रस का सन्निवेश अधिक है।

पहले अङ्क में[26] काम और रति नामक पात्रों के विलासपूर्ण कथन से श्रृंगार का स्पष्ट आभास मिलता है। काम और रति का श्रृंगार स्वरूप में बातचीत करना, प्रत्यक्ष श्रृंगार की उद्भावना करता है। संसार को अपनी मदभरी आंखों से

---

26. प्रबोधचन्द्रोदय, प्रथम अङ्क श्लोक 10, पृ0 13

मतवाला बनाता हुआ, रति के ऊँचे और स्थूल कुचद्वय को पीड़ित करते हुए उसके रोमांचित भुजाओं से आलिंगित होता हुआ कामदेव आ रहा है। यह पूरी तरह श्रृंगारिक वर्णन है । इसमें काम आश्रय है और रति आलम्बन विभाव है। रति के उच्च स्तन को पीड़ित करना, रोमांचित भुजाओं को आलंगन उद्दीपन विभाव है। उसके नेत्रों की चंचलता व मादकता आदि अनुभाव हैं । प्रसन्नता व हर्ष आदि संचारी भाव हैं। इस तरह रति नामक स्थायीभाव विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव के द्वारा पुष्ट होकर श्रृंगार रस का रूप ग्रहण करता है।

वीर रस का प्रयोग भी इस नाटक में कई बार किया गया है। चौथे अङ्क में राजा विवेक महामोह से युद्ध छिड़ जाने की बात जब कहता है तब उनमें से वस्तुविचार का वचन वीररस से परिपूर्ण है। यहाँ पर उसका कथन है कि पंचशर और पुष्पचाप वाले काम को जीतने के लिए शस्त्र की क्या जरूरत है फिर आगे वह कहता है कि शरतुल्य चतुर्दिक विस्तृत विचारों से शत्रु सैन्य का मंथन कर वह काम को उसी तरह मार सकता है जिस प्रकार कौरव सेना को मथ कर अर्जुन ने जयद्रथ को मारा था।

सोऽहं प्रकीर्णैः परितो विचारैः

शरैरिवोन्मथ्य बलं परेषाम्।

सैन्यं कुरूणामिव सिन्धुराजं

गाण्डीवधन्वेव निहन्मि कामम् ॥[27]

---

27. प्रबोधचन्द्रोदय, चतुर्थ अङ्क श्लोक 14, पृ0 148

इस उक्ति में वीर रस की पूर्ण उद्भावना हुई है। वस्तुविचार में निवास करने वाला 'उत्साह' ही इसका स्थायीभाव है। वस्तुविचार आश्रय, कामआलम्बन, काम की मादकता आदि उद्दीपन, काम को मारने का संकल्प, उत्साहपूर्ण वचनों का कहना आदि अनुभाव तथा धैर्य, मति, गर्भ और तर्क आदि संचारी भाव हैं। इन्हीं से परिपुष्ट स्थायीभाव 'उत्साह' रस चर्वणा में सहायक है।

रौद्र रस का स्थयीभाव क्रोध है। इसका स्पष्टीकरण द्वितीय अंङ्क में क्रोध के ही कथन से होता है जब क्रोध अपने महाराज मोह से यह कहता है कि

अन्धीकरोमि भुवनं बधिरीकरोमि

धीरं सचेतनमचेतनतां नयामि ।

कृत्यं न पश्यति न येन हितं श्रृणोति

धीमानधीतमपि न प्रतिसंदधाति ॥ [28]

"मैं संसार को अंधा कर सकता हूँ और बहरा कर सकता हूँ । धीर को अधीर तथा मूर्ख कर सकता हूँ जिससे उसे कर्त्तव्य का ज्ञान न होगा, उसे अपने हित की बात भी सुनाई नहीं पड़ेगी और बुद्धिमान होकर भी वह सभी बातें भूल जाएगा।" इत्यादि कथन से सचमुच क्रोध अभिव्यक्त हो जाता है यही रौद्र का स्थायीभाव है इसके शत्रु विवेक के दल वाले श्रद्धा आदि आलम्बन उनका विरूद्ध आचरण उद्दीपन, क्रोध ही आश्रय, उसकी गर्वोक्ति ही अनुभाव तथा चिन्ता, आवेग इत्यादि संचारी भाव हैं। इन्हीं से पुष्ट हुआ 'क्रोध' नामक स्थायीभाव रौद्ररस के रूप में अभिव्यक्त होता है।

---

28. प्रबोधचन्द्रोदय अङ्क दो श्लोक 29 पृ0 79

वीभत्स रस का स्पष्ट वर्णन वहां मिलता है जहां विष्णु भक्ति से श्रद्धा युद्ध का समाचार बता रही है -

बहुलरूधिरतोयास्तत्र सस्तुः स्रवन्त्यो

निबिडपिशितपङ्काः कङ्करङ्कावकीर्णाः ।

शरदलिततविदीर्णोत्तुङ्गमातङ्गशैल

स्खलितरयविशीर्णच्छत्रहंसावतंसाः ॥ 29

अर्थात् मांसरूपी कीचड़ से युक्त तथा कङ्करूप दीन प्राणियों से भरा हुआ रक्त रूपी जल से भरी हुई नदियां बहने लगीं । बाणों से टूटे हुए सिर वाले हाथी रूप पर्वत से वेग के साथ गिरने वाले छत्र उस नदी के हंस जैसे दीखाई पड़ते थे। इस वर्णन में सहृदय पाठकों की 'जुगुप्सा' ही इसका स्थायीभाव है । मांस, रक्त, कंकाल आदि आलम्बन, पाठक या दर्शक आश्रय, थूकना इत्यादि अनुभाव है।

हास्यरस का स्थायीभाव 'हास' है दूसरे अंङ्क के छठवें श्लोक में विचित्र भेषधारी पाखण्डी दम्भ का वर्णन पूर्णतः हास्यास्पद है -

---

29. प्रबोधचन्द्रोदय, अङ्क पांच, श्लोक 10 पृ0 176

मृदबिन्दुलाञ्छितललाटभुजोदरोरः

कण्ठोष्ठपृष्ठ चिबुकोरुकपोल जानु :।

चूडाग्रकर्णकटिपाणिविराजमान

दर्भाङ्कुरः स्फुरति मूर्त इवैष दम्भः ॥30

विभिन्न अंगों में चन्दन का लेप, शिखा और कमर में कुश धारण करना इत्यादि घटनाएं हंसाने वाली हैं । यहाँ दर्शक या पाठक ही आश्रय, कुश का कमर आदि में धारण करना उद्दीपन तथा वैचित्र्य आश्चर्य इत्यादि संचारी भाव हास्य अनुभाव है।

अद्‌भुत रस श्रद्धा

छठवें अंङ्क में ऐन्द्रजालिक विद्या का वर्णन करते हुए कहती है यह सौ योजन दूर का शब्द सुन लेता है, इसको वेद, पुराण तथा तर्क विद्यायें प्रकट होती हैं, यह पवित्र पदों द्वारा शास्त्र या कविता का निर्माण करता है। यह सम्पूर्ण संसार में घूमता हुआ मेरू की रत्न की खानों को देखता है।

शब्दानेष श्रृणोति यीजनशतादाविर्भवन्ति स्वत-

स्तास्ता वेदपुराणभारतकथास्तर्कादयो वाङ्मयाः ।

ग्रथ्नाति स्वयमिच्छया शुचिपदैः शास्त्राणि काव्यानि वा

---

30. प्रबोधचन्द्रोदय, द्वितीय अङ्क श्लोक - 6 पृ0 49-50

लोकान्भ्राम्यति पश्यति स्फुटरुचो रत्नस्थतीमैंरवी: ॥[31]

इसमें वर्णित अपूर्व वस्तु को देखकर श्रद्धा के मन में उत्पन्न विस्मय ही इस रस का स्थायीभाव है। मधुमती भूमिका आलम्बन, इसका विचित्र प्रभाव, स्वर्णिम बालुकामयी नदियां, पृथुजघना स्त्रियां आदि उद्दीपन मन आश्रय, मन का अनुमति देना अनुभाव तथ भ्रान्त आदि संचारी भाव है ।

करुण रस

पांचवें अंङ्क में मन सामान्य व्यक्ति की तरह अपनी पत्नी 'प्रवृत्ति' के दिवंगत होने पर विलाप करता है। उस स्थान पर करुण रस का प्रवाह देखने को मिलता है। उसके दु:ख से मन के हृदय में उत्पन्न शोक इस करुण रस का स्थायीभाव है । दिवंगता पत्नी आलम्बन, स्वयं मन आश्रय, आश्वास इत्यादि उद्दीपन और उसके स्मरण में प्रलाप, उसके गुणों का कथन इत्यादि अनुभाव तथा मोह, स्मृति, विषाद, जड़ता आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार अनेक स्थलों पर प्रत्येक रसों के अनेक उदाहरण और भी देखे जा सकते हैं ।

अत: अंगी और अंगरस को एक दूसरे के पूरक रूप में दिखाने का नाटककार का ध्येय सफल रहा है। लौकिक व्यक्तियों की श्रृंगार के प्रति अभिरुचि को दृष्टिगत रखते हुए श्रृंगारादि रसों के द्वारा ब्रह्मानंद जैसे शान्त से पूर्ण आनन्द को शान्तरस में परिणित कर देने में कवि की प्रतिभा प्रशंसा योग्य है । इस नाटक में मुख्य शान्त रस की सरस प्रभावशाली योजना गौण रसों को आधार बनाकर की गई

---

31. प्रबोधचन्द्रोदय षष्ठ अडक श्लोक 5 पृ0 207-208

है। यदि ये गौण रस न होते तो इनके अभाव में शान्त रस की योजना में मनोवैज्ञानिक प्रभाव का भी अभाव हो जाता । अत: गौण रसों ने जहां शान्त रस की नीरसता शुष्कता को दूर किया वहीं शान्त रस के आनन्द को स्थायित्व भी प्रदान किया है। अत: प्रबोधचन्द्रोदय रस योजना की दृष्टि से एक सरस एवं सफल प्रतीक नाटक है।

षष्ठम् अध्याय

प्रबोध चन्द्रोदय की दार्शनिकता एवं महत्त्व

षष्ठ अध्याय

प्रबोधचन्द्रोदय की दार्शनिकता एवं महत्त्व

'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक के मङ्गलाचरण [1] से ही नाटक की दार्शनिकता की स्पष्ट झलक मिलने लगती है। यहाँ यह स्पष्ट होता है कि नाटककार 'अद्वैतवेदान्त' सिद्धान्त के मतावलम्बी हैं। उनके अनुसार यह जगत् अज्ञान के कारण ही भासित होता है जैसे कि दोपहर की प्रखर रविरश्मियां में जंलराशि की प्रतीति होती हैं और जिस तरह माला में प्रतीत होने वाला सर्प का फण माला का ज्ञान हो जाने पर स्वत: विलुप्त हो जाता है। उसी प्रकार तत्त्व ज्ञान हो जाने पर यह सम्पूर्ण विश्व तिरोहित हो जाता है अर्थात सत्यज्ञान होने पर द्वैत की प्रतीति नहीं होती। यहाँ पर आचार्य गौडपाद की पंक्ति 'ज्ञातेद्वैतं न विद्यते'[2] की प्रतिध्वनि स्पष्ट सुनाई पड़ती हैं ।

---

1. मध्याह्नर्कमरीचिकास्विव पय: पूरो यदज्ञानत:

   खं वायुर्ज्वलनों जलं क्षितिरिति त्रैलोक्यमुन्मीलति ।

   तत्तत्वं विदुषां निमीलति पुन: स्त्रग्भोगिभोगोपमं

   सान्द्रानन्दमुपास्महे तदमलं स्वत्मावबोधं मह: ॥

   – प्रबोधचन्द्रोदय, अङ्क 1, श्लोक 1

2. माण्ड्क्यकारिका

चरमतत्त्व नितान्त ही निर्मल, स्वयं प्रकाश, स्वात्मानुभूतिरूप, आनन्द स्वरूप तेज ही है और उसके अतिरिक्त कुछ नहीं । इस प्रकार संक्षेप में बताए गये ' सत्यंब्रह्म, जगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैवनापर:' के अनुसार एक मात्र ब्रह्म की सत्ता, संसार का मिथ्यात्व और ब्रह्म का संसार और जीवादि रूप में प्रतीत होना ही है।

जैसा इसके नाम और लक्ष्य से प्रबोध चन्द्र का उदय होना स्पष्ट है, वह इसके वेदान्त तत्त्वों का प्रतिपादन ही लक्षित करता है। इस प्रबोधरूपी चन्द्र के उदय की स्थिति अथवा प्रबोधोत्पत्ति विवेक के द्वारा उपनिषद्देवी से होती है।[3] इस वाक्य से उपनिषद ही इस ग्रन्थ का दार्शनिक आधार सिद्ध होता है। इतने मात्र से 'उपनिषद रूपी प्रमाण' वाले वेदान्त दर्शन की प्रतिपाद्यता स्फुट हो जाती है तथा त्रैलोक्योन्मीलन के मूल में अज्ञान तथा तत्त्वज्ञान में उसके मालासंर्पफणवत्निमिलन की प्रतिपादन प्रणाली को देखते ही लगता है कि यह वेदान्त भी अद्वैत वेदान्त ही है जिसके मूल व्याख्याता एवं द्रष्टा के रूप में आचार्य गौडपाद एवं शंकर आदि पूजित हैं । नाटककार द्वारा इस 'अद्वैत वेदान्त' के स्वरूप का निर्धारण इस प्रकार देखा जा सकता है।

नाटककार अद्वैत वेद्वान्त के **तत्त्व विचार** पर सर्वप्रथम अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं कि यह एक अंतिम तत्त्व है, वह स्वात्मावबोध रूप एवं तेजोमात्र है,

---

3. .... सा खलु विवेकेनोपनिषदेव्यां प्रबोधचन्द्रेण भ्रात्रा समं जनयितव्या ।

– प्रबोधचन्द्रोदय अङ्क 1 पृ0 26

चिदानन्दमय एवं निरंजन है।[4] वह सदा एकरस अज एवं अविकारी है, निष्कल है निर्मल है और अनुदितानस्तप्रकाश है –

शान्तं ज्योतिः कथमनुदितानस्तनित्यप्रकाशं

विश्वोत्पत्तौ व्रजति विकृतिं निष्कलं निर्मलं च।

शश्वन्नीलोत्पलदलरुचामम्बुवाहावलीनां

प्रादुर्भावे भवति नभसः कीदृसो वा विकारः ।[5]

वह परमतत्त्व ही आत्म तत्त्व है । इस तत्त्व के सम्यक् ज्ञान के अतिरिक्त मुक्ति का कोई मार्ग नहीं है। यही ब्रह्म ईश्वर कहलाता है । जब यह भासमान संसार इसके ईक्षण से माया के द्वारा सृष्ट जैसा होने लगता है।

अयः स्वभावादचलं बलाच्चल –

---

4. ˆ ˆ ˆ

ˆ ˆ ˆ

चिरं चिदानन्दमयो निरञ्जनो

जगत्प्रभुर्दीनदशामनीयत ॥

प्रबोधचन्द्रोदय, अङ्क 1 श्लोक 24

5. प्रबोधचन्द्रोदय षष्ठ अङ्क श्लोक 23 पृ0 230

त्यचेतनं चुम्बकसंनिधाविव ।

तनोति विश्वेक्षितुरीक्षितेरिता

जगन्ति मायेश्वरतेयमिशितुः ॥6

इसी महेश्वर की माया से मन की उत्पत्ति और उसी से यह सारा त्रैलोक्य उत्पन्न होता है-

पुंसः सङ्गसमुज्झितस्य गृहिणी मायेति तेनाप्यसा

वस्पृष्टापि मनः प्रसूय तनयं लोकानसूत क्रमात् ।

तस्मादेव जनिष्यते पुनरसौ विद्येति कन्या यया

तातस्ते च सहोदराश्च जननी सर्वे च भक्ष्यं कुलम् ।7

यह माया अनादि है इसकी यह सारी सृष्टि सच्ची नहीं है केवल स्वप्नवत् है—

जातोऽहं जनको ममैष जननी क्षेत्रं कलत्रं कुलं

पुत्रा मित्रमरातयो वसु बलं विद्याः सुहृद्वास्धवाः ।

---

6. प्रबोधचन्द्रोदय, अङ्क 6 श्लोक 16

7. प्रबोधचन्द्रोदय अङ्क 1, श्लोक 19

चित्तस्पन्दितकल्पनामनुभवन्विद्वानविद्यामयीं

निद्रामेत्य विघूर्णितो बहुविधान् स्वप्नानिमान्पश्यति ॥8

इसी माया के संघ से यह तत्त्व 'पुमान्' या जीव कहलाने लगता है और माया के ही प्रभाव सेअपने आपको उत्पन्न और सांसारिक पिता, पुत्र, मित्र, शत्रु आदि स्वरूपों में बंधा हुआ समझता है जबकि वह न कभी उत्पन्न हुआ और न कभी किसी प्रकार बंधा हुआ है तथा न ही ब्रह्मतत्त्व से किसी तरह भिन्न ही है—

एकोऽपि बहुधा तेषु विच्छिद्येव निवेशितः ।

स्वचेष्टितमथो तस्मिन्विदधाति मणाविव ॥9

अनादि माया के कारण ही उसकी ब्रह्म से भिन्नता प्रतीत होती है जीव ब्रह्म से प्रतिबिम्ब की भांति अलग है ही नहीं। 'यह उसका अंश है' यह भी नहीं कहा जा सकता । प्रथम अंङ्क में सूत्रधार द्वारा चेदिपति की स्तुति परम्परा के समय कुछ पुरूषों को 'भगवन्नारायणांशसमुद्‌भूत्' 10 कहने पर जीव और ब्रह्म का सम्बन्धअंशाशि-भाव का है, यह भी नहीं समझ लेना चाहिए। इस प्रकार के सम्बन्ध को अद्वैत वेदान्त में स्वीकार नहीं किया गया है। नटी को समझाने के लिए आरम्भ में कहे गये शब्द को नाटककार का मत नहीं समझना चाहिए क्योंकि षष्ठ अंङ्क में

---

8. प्रबोध चन्द्रोदय, अङ्क 1 श्लोक 24

9. प्रबोधचन्द्रोदय अङ्क 1 श्लोक 28

10. प्रबोधचन्द्रोदय, अङ्क 1, पृ0 11

पुरुष, विवेक और उपनिषद् के संलाप के बीच 'तत्त्वविचार' का प्रतिपादन करते हुए प्रतिबिम्ब के माध्यम से दोनों को एक ही तत्त्व विचार कहा गया है—

असौ त्वदन्यो न सनातनः पुमान्

भवान्न देवात्पुरुषोत्तमात्परः ।

स एष भिन्नस्त्वदनादिमायया

द्विधेव बिम्बं सलिले विवस्वतः ॥[11]

प्रबोधोदय होने पर पुरुष स्वयं अनुभव करता हुआ कहता है कि ' विश्वात्मा स्फुरति विष्णु रहं स एषः ।[12] विशिष्टाद्वैतवादी जो अंशाशिभाव मानते हैं, जीव ही विष्णु है यह कभी स्वीकार नहीं कर सकते। अतः श्रीकृष्ण मिश्र ने अद्वैत का ही प्रतिपादन किया है, यह स्पष्ट है ।

---

11. प्रबोधचन्द्रोदय, अङ्क 6, श्लोक 25

12. मोहान्धकारमवधूय विकल्पनिद्रा

    मुन्मथ्य कोऽप्यजनि बोधतुषार रश्मिः ।

    श्रद्धाविवेकमतिशान्तियमादिकेन

    विश्वात्मकः स्फुरति विष्णुरहं स एषः ॥

    - प्रबोधचन्द्रोदयम्, अङ्क 6 श्लोक 30

मन और संसार की आत्मतत्त्व के माया सम्पर्क से जो उत्पत्ति कही गयी है चाहे वह तुच्छ हो, मिथ्या हो जो कि सिद्ध है लेकिन उस तत्त्व का माया से सम्पर्क होने पर उस तत्त्व की असंगता कहां रहीं? नाटककार सजगता से इस शंका का समाधान करते हैं। उन्होंने अपने नाट्यग्रन्थ के पहले अङ्क के उन्नीसवें श्लोक में इसका समाधन करते हुए कहा है 'पुंसः सङ्ग समुज्झितस्यं गृहिणी मायेति तेनाप्यसौ । इस तरह 'प्रबोधचन्द्रोदय'' ही मोक्ष साधन रूप में स्वीकार हुआ है। उपासना पद्धति का विनियोग प्रबोधचन्द्रोदय एवं विद्या को उत्पन्न कराने मात्र में है। उपनिषद् में विवेक से दोनों की उत्पत्ति हो सकती है। विष्णु भक्ति से आदिष्ट निदिध्यासन यही स्थिति उत्पन्न कराने में सहायक सिद्ध होता है।[13] विद्या मन के हवाले होती है और पूरे परिवार के साथ मोह को ग्रस्त करते हुए अन्तर्हित हो जाती है और पुरुष को 'प्रबोधोदय की प्राप्ति होती है।[14] यह आत्मतत्त्व का निर्विकल्पक साक्षात्कार रूप है। बस इतने से ही पुरुष को विघटित तिमिर पटल प्रभात का एहसास होने लगा और

---

13. प्रबोधचन्द्रोदय अङ्क 6, पृ0 236

14. उद्यामद्युतिदामभिस्तडिदिव प्रद्योतयन्ती दिशः

प्रत्यग्रस्फुटदुत्कटास्थि मनसो निर्भिद्य वक्षःस्थलम्।

कन्येयं सहसा समं परिकरैर्मोहं ग्रसन्ती भज -

त्यन्तर्धानमुपैति चैकपुरु षं श्रीमान्प्रबोधोदयः ।

– प्रबोधचन्द्रोदय, अङ्क 6, श्लोक 28

वह जीवन्मुक्त हो गया । 'स्वायंभुव मुनि' हो गया ।[15] वह नीरजस्क सदानन्द पद में निवेशित हो गया। विशिष्टाद्वैत आदि वेदान्ती दर्शन जीवन्मुक्ति नहीं स्वीकार करते। शांकर वेदान्त में इस तरह की स्पृहणीय स्थिति को स्वीकार किया गया है । यहाँ पर पुरूष विवेक से ज्ञान का उपाय पूछते पूछते अनन्त शान्त ज्योति पद को प्राप्त हो जाता है। शान्तं ज्योतिरनन्तमन्तरदितानन्दः समुद्योतते ।[16]

आचार्य श्री कृष्ण मिश्र ने अद्वैत मत के अनुसार तत्त्व व्याख्या प्रस्तुत करने के साथ ही **साधना मार्ग** की विवेचना भी भक्ति के द्वारा वर्णित की है। उनके अनुसार तत्त्वज्ञान के लिए भक्तिमार्ग का ही आश्रय लेना चाहिए। अपने मत की पुष्टि करते हुए उन्होंने विष्णुभक्ति का अवलम्बन लिया है। मोक्ष की साधना में विष्णुभक्ति का प्रबल संयोग है। यह विष्णु भक्ति श्रद्धा और धर्म की रक्षा करती है -

मैत्री - श्रुतं मया मुदितायाः सकाशाद्यथा महाभैरवीसङ्गनसन्संभ्रमाद्भगवत्या विष्णुभक्त्या परित्राता प्रियसखी श्रद्धेति। तदुत्कण्ठितेन हृदयेन प्रियसखीं श्रद्धां कदा प्रेक्षिष्ये ।[17]

---

15. सङ्गं न केनचिदुपेत्यकिमप्यपृच्छन्
गच्छन्नतर्कितफलं विदिशं दिशं वा ।
शान्तो व्यपेतभयशोककषायमोहः
स्वायंभुवो मुनिरहं भवितास्मि सद्यः ॥
- प्रबोधचन्द्रोदय, अङ्क 6, श्लोक 31

16. प्रबोधचन्द्रोदयम् , अङ्क 6, श्लोक 27

17. प्रबोधचन्द्रोदयम् पृ0 131

साधनाक्रम के **प्रथम स्तर** को अभिव्यक्त करते हुए नाटककार यह दिखाता है कि मानव के उन्नति में बाधित मोहादि दुर्गुणों को पराजित करने के लिए भक्ति से अनुप्राणित श्रद्धा और विवेक तथा शान्ति, मुदिता, मैत्री एवं उपेक्षा आदि वृत्तियां कार्यरत होती हैं । **दूसरे स्तर** पर विष्णुभक्ति वैयासिकी सरस्वती के अमृतोपम उपदेशों द्वारा अनिश्चित एवं भ्रान्ति की सम्भावना वाले मन को कल्याण मार्ग पर स्थिर रखने की व्यवस्था करती है। सरस्वती – प्रेषितास्मि भगवत्या विष्णुभक्त्या।

यथा 'सखि सरस्वती, गच्छापत्यव्यसनखिन्नस्य मनसः

प्रबोधनाय। यथा च तस्य वैराग्योत्पत्तिर्भवति तथा यतस्वे' ति ।[18]

इससे मन निवृत्ति की ओर अग्रसर होता है। साधन क्रम के **तीसरे स्तर** पर निवृत्ति प्राप्त मन ब्रह्म पुरुष तत्त्व ज्ञान के योग्य बनता है। विष्णुभक्ति उपनिषद् को पुरुष के समीप लाकर विवेक के साथ 'तत्त्वमसि' का उपदेश देने की अनुमति देती है। [19] उपदेश ग्रहण करने के पश्चात् वह मनन करना प्रारम्भ करता है । साधन क्रम के

---

18. प्रबोधचन्द्रोदयम् , अङ्क 4, पृ0 183–184

19. विवेकः – अयमुच्यते –

एषोऽस्मीति विविच्य नेतिपदतश्चित्तेन सार्धं कृते

तत्त्वानां विलये चिदात्मनि परिज्ञाते त्वमर्थे पुनः ।

श्रुत्वा तत्त्वमसीति बाधितभवध्वान्तं तदात्मप्रभं

शान्तं ज्योतिरनन्तमन्तरुदितानन्दः समुद्द्योतते ॥

प्रबोधचन्द्रोदय अंङ्क 6, पृ0 235 श्लोक 27

चतुर्थ एवं अंतिम स्तर पर निदिध्यासन की कार्यवाही होती है। विष्णुभक्ति उसे भी आदेश देकर पुरुष में विद्या के द्वारा अज्ञान के अंधकार का नाश और प्रबोध के उदय से अलौकिक ज्यातिरूप ब्रह्मानन्द का अनुभव कराता है।

मोहान्धकारमवधूय विकल्प निद्रा -

मुन्मथ्य कोऽप्यजनि बोधतुषाररश्मिः।

श्रद्धाविवेकमतिशान्तियमादिकेन

विश्वात्मकः स्फुरति विष्णुरहं स एषः ॥[20]

साधक को आत्मसाक्षात्कार होता है और वह कृतकृत्य होता है और वह विष्णुभक्ति के प्रति अपनी कृज्ञता का प्रकाशन करता है।[21]

इस तरह नाटकीय ढंग से तत्त्वज्ञान और विष्णु भक्ति का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया गया है। विष्णु भक्ति के अतिरिक्त इस निःश्रेयस साधना में उच्चकोटि के सहयोग देने वाले व्यक्तित्त्व (अमूर्त्त) वैयासिकी सरस्वती एवं उपनिषद् हैं। इस तरह ब्रह्मानन्द की अनुभूति ही प्रबोधोदय है, यही साध्य है और मानव की आध्यात्मिक सिद्धि भी है।

---

20. प्रबोधचन्द्रोदय अङ्क 6, श्लोक 30

21. देव्या विष्णुभक्तेः प्रसादात्किं नाम दुष्करम। (इति पादयोः पतति)

प्रबोधचन्द्रोदय, पृ0 240, अङ्क 6

अन्य दार्शनिक मतों से भेद

आचार्य श्री कृष्ण मिश्र अवैदिक दार्शनिक सिद्धान्तों के घोर विरोधी थे। इसी वजह से उन्होनें प्रबोधचन्द्रोदय नाटक में वेद विरोधी चार्वाक, जैन, बौद्ध और सोमसिद्धान्त को महामोह का किंकर कहा है।[22] और दिखाया है कि किस प्रकार वे विवेक का विरोध करने में प्रयासरत रहते हैं। इसीलिए महामोह के विनष्ट एवं पराजित हो जाने पर उन्हें देश देशान्तर में निर्वासित करने का वर्णन किया गया है।[23]

यहाँ यथार्थ रूप से तर्क विद्या एवं मीमांसादि पक्षों को अंकित करने का प्रयास किया गया है। ये मतवाद भी पहले तो सम्मिलित रूप से महामोह को पराजित करने में एकमत रहते हैं फिर उपनिषद् की यात्रा के प्रसंग में इनकी भी आवश्यक एवं वांछनीय भर्त्सना करके निराकृति करा दी जाती है।[24] इस तरह यह कहा जा

---

22. भो, इदं मया गणितेन ज्ञातम्। यत्सर्वेऽपि वयं महामोहस्य किङ्करा इति।

प्रबोधचन्द्रोदय, अङ्क 3, पृ0 127

23. तस्मिन्नेवातिमहति महादारुणे सङ्ग्रामे परापरपक्षविरोधितया पाषण्डागमैरग्रेसरीकृतं लोकायतं तन्त्रमन्योन्यसैन्यविमर्दनैर्नष्टम्। अन्ये तु पाषण्डागमा मूलनिर्मूलतया सदागमार्णवप्रवाहेण पर्यस्ताः। सौगतास्तावत्सिन्धुगान्धारपारसीकमागधान्ध्रहूणवङ्गकलिङ्गमेदीन्म्लेच्छप्रायान्प्रविष्टाः। पाषण्ड-दिगम्बरकापालिकादयस्तु पामरबहुलेषु पाञ्चालमालवाभीरावर्तसागरानूपेषु सागरोपान्ते निगूढं संचरन्ति। न्यायाद्यनुगतमीमांसयावगाढप्रहारजर्जरीकृता नास्तिकतर्कास्तेषामेवागमा -नामनुपथं -प्रयताः।

प्रबोधचन्द्रोदयम्, अङ्क 5, पृ0 177-78

24. आः वाचाले, परमाणुभ्यो विश्वमुत्पद्यते। निमित्तकारणमीश्वरः। अन्यया तु सक्रोधमुक्तम् - आः पापे, कथमीश्वरमेव विकारिणं कृत्वा विनाशधर्मिणमुपपादयसि। ननु रे प्रधानाद्विश्वोत्पत्तिः।

प्रबोधचन्द्रोदय, अङ्क 6, पृ0 229

सकता है कि प्रबोधचन्द्रोदय नाटक में अद्वैत वेदान्त सिद्धान्त की प्राण प्रतिष्ठा कराई गई है।

प्रबोध चन्द्रोदय का महत्व :

संस्कृत साहित्य में प्रबोधचन्द्रोदय का महत्वपूर्ण स्थान है । संस्कृत वाङ्मय में प्रतीक नाटक अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। यह प्रबोधचन्द्रोदय की विशिष्टता ही है कि उसकी कोटि का पूर्णतः प्रतीक नाटक इसके पूर्व समुपलब्ध नहीं होता । श्री कृष्ण मिश्र ने ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य इस नाटक की रचना की। उन्होंने अपने अध्ययन के बल पर एवं चिंतन प्रवाह से पूर्ववर्त्ती साहित्य को आत्मसात कर लिया। इससे पूर्व दसवीं शताब्दी में 'उपमितिभव प्रपञ्चकथा' नामक अमूर्त्त शैली के ग्रन्थ की उल्लेख मिलता है। डा0 जयदेव ने प्रबोधचन्द्रोदय को इसका अनुकरण माना है परन्तु ऐसा मानना प्रबोधचन्द्रोदय जैसे मौलिक नाटक के प्रति अन्याय करना है। ऐसा माना जा सकता है कि श्री कृष्ण मिश्र उपमितिभव प्रपञ्चकथा से प्रभावित हुए हों । श्री कृष्ण मिश्र ने जिस प्रकार प्रबोधचन्द्रोदय नाटक में अमूर्त्त पात्रों के द्वारा पूर्ण दार्शनिकता से समन्वित विषय को नाटकीयता का रूप दिया, उससे यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह नाटककार की पूर्णतः मौलिक प्रतिभा की देन है। क्योंकि इस प्रतीक नाटक में छन्द योजना, सरसता, रोचकता, इत्यादि का प्रतिपादन बहुत ही सरल एवं सहज ढंग से किया गया है। इससे पूर्व भी इस शैली का कोई भी प्रतीक नाटक पूर्णतः समुपलब्ध नहीं होता। प्रबोधचन्द्रोदय के अध्ययन से पता चलता है कि पूर्व परम्परा का अनुकरण करने के साथ ही श्री कृष्ण मिश्र वेद, उपनिषद्

और षड्दर्शन आदि के प्रकाण्ड विद्वान भी थे। यही वजह रही कि वह अपनी विद्वता के बल पर कीर्ति वर्मा के राज्यसभा में गुरू पद से आदृत थे। प्रबोधचन्द्रोदय नाटक का कई भाषाओं में अनुवाद किया गया। यह भी इस नाटक की महत्ता प्रदर्शित करता है।

सामान्य नाटकों से तुलनात्मक महत्त्व :-

संस्कृत वाङ्मय के अंतर्गत दृश्यकाव्य की लोकप्रियता श्रव्य काव्य की अपेक्षा अधिक स्वीकार्य है। इसीलिए जनमानस के सबसे अधिक निकट प्रवेश करने वाली साहित्यविधा नाट्य विधा ही है। इसमें लोग प्रत्यक्ष रूप से रसोपलब्धि कर पाते हैं। ऐसा काव्य के किसी और रूप के साथ संभव नहीं, जिसमें दर्शकों की शीघ्र प्रतिक्रिया मिलती हो। साहित्य इतिहास के शुरु में तो सम्पूर्ण वाङ्मय को ही नाटक माना गया। काव्य सम्बन्धी अधिकांश चिंतन मनन नाटक को केन्द्र में रखकर किया गया है। भरत मुनि ने अपने काव्य सम्बन्धी चिंतन मनन को नाट्य शास्त्र में ही तिरोहित कर दिया। अतः इससे स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि में नाटक ही साहित्य का पर्याय था।[25] अर्थात नाटक कहने से सम्पूर्ण साहित्य का बोध होता था। नाटक की इस महत्वपूर्ण

---

25. काव्य की परिभाषा :- मृदुललितपदाढ्यं गूढ़शब्दार्थ हीनं,

जनपद सुखबोध्यं युक्तिमन्नृत्ययौज्यम् ।

बहुकृतंरसमार्गं संधिसंधानयुक्तं ,

सभवति शुभकाव्यं नाटक प्रेक्षकाणाम् ॥

– नाट्यशास्त्र, 16-128

भूमिका के संदर्भ में यह प्रतीक नाटक भी अपनी कुछ प्रमुख आवश्यकताओं को लेकर अवतरित हुआ। श्रीकृष्ण मिश्र को अपनी इस महत्वपूर्ण भूमिका का भलीभाँति ज्ञान था। वाङ्मय के परिपेक्ष्य में उन्होंने अपने समवेत रूप से अपनी मर्यादा और गौरवमयी परम्परा सजीवता के साथ विकसित करने का सफल प्रयास किया। यद्यपि इस प्रतीक नाटक का वाह्य रूप साधारण नाटकों से भिन्न नहीं है फिर भी इसमें कथ्य का लम्बा अन्तराल अवश्य ही देखने को मिलता है। सामान्य नाटक जहां अपने कथ्य में लौकिक जीवानुभूतियों से प्रेरणा ग्रहण करते रहे हैं वहीं इस प्रतीक नाटक का विषय मनुष्य के तार्किक और दार्शनिक सिद्धान्तों से सम्बन्धित है। साधारण नाटक जहाँ मनुष्य की रागात्मक वृत्ति का ही परितोष करके रह जाते हैं वहीं यह नाटक मनुष्य की उच्च बौद्धिक तार्किक वृत्ति को भी संतुष्ट करने में सफल होता है। जहां साधारण नाटक मनुष्य के मानसिक मनन चिंतन को प्रभावित नहीं कर सकते वहीं यह नाटक तत्त्व चिंतकों के मन पर खलबली मचा देता है। सामान्य नाटक दर्शकों में राग, द्वेष, प्रेम, घृणा इत्यादि मनोभावों को उत्तेजित करके अलौकिक आनन्द देने में ही सफल होते हैं वहीं यह नाटक बड़े बड़े तार्किकों और दार्शनिकों को पुनः चिंतन के लिए चुनौती देता है।

साधारण नाटकों की अपेक्षा यह प्रबोधचन्द्रोदय रूपी प्रतीक नाटक इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि साधारण नाटक जहाँ लौकिक चरित्रों द्वारा मानसिक भावों को जागृत करता है, वहां यह प्रतीक नाटक सभी तरह के मानसिक भावों को पात्रों में रूपायित कर देता है। यह इस प्रतीक नाटक की मनोवैज्ञानिक विशेषता है कि इसके पात्र मानसिक भावनाओं के प्रतीक बनकर अवतरित होते हैं। लौकिक चरित्रों को चित्रित करना आसान है किन्तु अमूर्त्त भावनाओं या शास्त्रों को एक स्पष्ट आकार देना बहुत ही कठिन कार्य है और फिर ऐसे सूक्ष्म भावों को, जिनके स्वरूप का

भी कोई स्थिर निर्णय न हो सका हो, पात्र रूप में कल्पित कर देना श्रीकृष्ण मिश्र के मनोवैज्ञानिक सामर्थ्य को भी प्रदर्शित करता है।

उपर्युक्त विवेचना यह स्पष्ट करती है कि प्रतीक नाटकों की इस श्रृंखला को पुनरुज्जीवित करने के कारण श्री कृष्ण मिश्र ने संस्कृत वाङ्मय में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । साहित्य उपदेश का साधन माना जाता है और उपदेश भी कैसा, जो मधुर और प्रिय न हो। आचार्य मम्मट के अनुसार 'कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे'[26] तात्पर्य यह कि साहित्य अपनी स्त्री के सुमधुर सिखावे की प्रकृत्ति का होता है। बहुत विवादों के पश्चात भी साहित्य के प्रयोजन के सम्बन्ध में हमें यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है कि साहित्य मनुष्य को सदुपदेश देता है। प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के प्रणयन में हमारी समझ से साहित्य सम्बन्धी यही प्रयोजन प्रेरक तत्त्व के रूप में रहा होगा । वस्तुतः साधारण नाटकों में अधिक सुविधा रहती है। साधारण नाटकों में उपदेश जहां ध्वनित होकर रह जाता है वहां इस प्रतीक नाटक में वह अभिधेय बनकर प्रकट हो गया है। साधारण नाटकों में सभी मनोभावों की अभिव्यक्ति और उससे दर्शकों का ज्ञान सम्भव नहीं किन्तु इस प्रतीक नाटक में सभी मनोभावों को दर्शक परदे पर प्रत्यक्ष चलते -फिरते देख लेते हैं। जिससे दर्शकों की उत्सुक्ता बनी रहती है। साथ ही उनका प्रभाव भी अधिक स्थायी होता है। चूँकि इसका महत्व अपने अभीष्ट लक्ष्य की पूर्ति में होता है, इसलिए इसकी कथावस्तु अपने आकार प्रकार में बहुत लम्बी चौड़ी नहीं है। इसमें अद्वैत सिद्धान्तों को लेकर ही उसकी मनोरंजनीय विवेचना की गयी है। इसलिए

---

26. काव्य प्रकाश - प्रथम उल्लास कारिका 2

प्रबोधचन्द्रोदय में कथा का रूप बहुत सुदृण नहीं है। किन्तु महत्वपूर्ण तो है ही। सुदृढ़ रूप न होने के कारण कथायोजना में नाटककार को काफी सतर्कता बरतनी पड़ी है कथा तन्तुओं को संयोजित और संघटित करना पड़ा है। यह सब कठिनाई अमूर्त्त कथानक के कारण ही है। चूंकि इस नाटक में कथातन्तुओं को सफलता के साथ संघटित कर लिया गया है तभी यह प्रभावशाली बन पड़ा है। अन्यथा यह साधारण नाटकों की तुलना में हेय और तुच्छ बन जाता ।

ठीक यही कठिनाई रसाभिव्यक्ति को लेकर भी है। रस काव्य की आत्मा है। इसलिए सभी काव्य कृतियों में रसों की स्थिति अनिवार्य रूप में स्वीकार की गई है। रसाभिव्यक्ति का यह सामान्य नियम है कि वह काव्य के भावों से पाठकों का साधारणीकरण होने पर ही पाठकों में रसाभिव्यक्त हो सकती है। इस साधारणीकरण के लिए आवश्यक है कि दर्शक अभिनेता में अपना प्रतिबिम्ब देखें वह उसकी भावनाओं से मेल खाये और वह उसकी मनोग्रन्थियों से परिचित हो। जब तक दर्शक और पाठक में ऐक्यस्थापना नहीं होती तब तक पूर्ण रूप से रसाभिव्यक्ति नहीं हो सकती। चूँकि साधारण नाटकों में दर्शकों के तरह के ही मांसल चरित्रों को लिया जाता है इसलिए रसाभिव्यक्ति भी सुविधापूर्वक कराई जा सकती है किन्तु इस प्रतीक नाटक में यह सम्भव नहीं है। इसमें मानसिक भावनाओं, प्रवृत्तियों और आंतरिक इच्छाओं जैसे अमूर्त्त पात्रों की सर्जना करनी पड़ी है। इस प्रतीक नाटक में रसाभिव्यक्ति का कार्य दुरूह है, लेकिन असम्भव नहीं। यह तो श्रीकृष्ण मिश्र की अद्‌भुत कल्पनाशक्ति और जागरूक मनोवैज्ञानिक प्रतिभा थी कि उन्होंने अपने अमूर्त्त पात्र विषयक वर्णनों में भी सजीवता ला दी है। इनके चरित्र इतने जीवन्त और

सक्रिय चित्रित किए गये हैं कि उन्हें दर्शनिक मतवादों की कठपुतली समझने का भ्रम नहीं होता। उनमें वही मांसल सौन्दर्य अभिव्यंजित हुआ है जो साधारण नाटकों के चरित्रों में व्यंजित होता है। इसप्रकार रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से श्रीकृष्ण मिश्र को सफल नाटककार माना जा सकता है। अत: साधारण नाटकों के रचयिताओं की अपेक्षा प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के रचनाकार का अपना एक विशेष महत्व है।

प्रबोधचन्द्रोदय का सामाजिक महत्व :

प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के महत्त्व की बात तब तक पूरी नहीं हो पाती जब तक कि इस प्रतीक नाटक की सामाजिक उपादयता पर विचार न कर लिया जाए, का जनमानस पर क्या प्रभाव पड़ा है इस दृष्टि से विचार करना अपेक्षित है। हम जानते हैं कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। मनुष्य के रागद्वेष एवं उसके मनोजगत् का उद्घाटन साहित्य में होता है। इसलिए साहित्य का सम्बन्ध मनुष्य जीवन के पथ प्रदर्शक के रूप में माना जाता है। अत: प्रबोधचन्द्रोदय से भी साहित्य की इसी अभिव्यक्ति की अपेक्षा की जानी चाहिए। यहाँ पर हमें यह दृष्टिकोण रखना पड़ेगा कि प्रबोधचन्द्रोदय मनुष्य के सामाजिक धरातल को किस सीमा तक प्रभावित या अप्रभावित करता है।

प्रबोधचन्द्रोदय की इस भूमिका में यह तो स्वीकार करना ही होगा कि इस नाटक ने अपने ढंग से समाज के लोगों में जीवन की समरसता की जगह उनके चिंतन पक्ष को अधिक प्रभावित किया है। जीवन की समरसता जगाना साधारण नाटकों का कार्य है एवं इसके चिंतन पक्ष को प्रभावित करना दार्शनिक प्रतीक

नाटक प्रबोधचन्द्रोदय का कार्य है । यह दोनों कार्य अपने अपने स्थान पर बराबर महत्वपूर्ण हैं। समाज का रागद्वेष जितना बड़ा सत्य है उतना ही बड़ा सत्य उसका चिंतन मनन भी है। हमें यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि इस प्रतीक नाटक ने अपने सम सामयिक समाज को अद्वैत दर्शन के क्षेत्र में बार बार चिंतन करने पर मजबूर किया होगा।

प्रबोधचन्द्रोदय के सामाजिक महत्त्व का एक दूसरा पक्ष यह भी है, जो इसके उद्देश्य से सम्बन्धित है । श्री कृष्ण मिश्र ने एक प्रबुद्ध दार्शनिक होते हुए भी सामान्य जनमानस को दर्शन के क्लिष्ट विषय में रुचि लेना तो सिखाया ही, साथ ही जनमानस का सम्बन्ध दर्शन से जोड़कर उसे तत्त्व चिन्तन की ओर अग्रसर किया। प्रबोध चन्द्रोदय की यह देन सबसे महत्त्वपूर्ण है कि इसी तत्त्व चिंतन के आधार पर समाज स्वत: गतिशीलता एवं जीवन्तता का अनुभव करता है ।

प्रबोधचन्द्रोदय के उद्देश्य का एक पक्ष है मोक्ष की प्राप्ति। प्रबोधचन्द्रोदय सहित लगभग सभी नाटकों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अपवर्ग की प्राप्ति का लक्ष्य रखा गया है। भारतीय दर्शन का अधिकतर भाग मोक्ष की प्राप्ति के मार्ग का अनुसंधान करता है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में चार श्रेय बताए गये हैं – धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। इसमें सबसे अधिक महत्व मोक्ष को दिया गया है अत: मोक्ष को ही मनुष्य का अंतिम साध्य माना जाता है।

मोक्ष को काव्य अथवा साहित्य में भी लक्ष्य के रूप में भी स्वीकार किया गया है। यद्यपि काव्य के उद्देश्य के रूप में केवल अर्थ, धर्म एवं काम को ही महत्त्व मिला है। किन्तु मोक्ष हमेशा उपेक्षित नहीं रहा है। और फिर प्रतीक नाटकों के साथ

मोक्ष की संगति इसलिए भी बैठ जाती है क्योंकि इनका विषय तत्त्वचिंतन का विषय है। इसी तरह प्रबोधचन्द्रोदय का भी विषय तत्त्व चिंतन है एवं इसका अंतिम साध्य मोक्ष प्राप्ति है। उदाहरणार्थ इस नाटक में विवेक को प्रबोधोत्पत्ति के लिए बार-बार प्रवृत्त किया गया है। इस प्रबोध की उत्तपत्ति के बाद ही अज्ञानान्धकार दूर हुआ और पुरुष की विष्णु भक्ति के प्रसाद से मुक्ति मिली। प्रबोध चन्द्रोदय के अतिरिक्त जिन प्रतीक नाटकों में किसी भक्ति की प्रतिष्ठा है उनमें भी अप्रत्यक्ष रूप से मोक्ष की बात मानी गयी है। इन सभी प्रतीक नाटकों में चाहे वह प्रबोधचन्द्रोदय हो या अन्य कोई और नाटक इनमें नायक अंतिम अवस्था में ब्रह्म का साक्षात्कार करता है तथा जो अपनी चित्तवृत्त्यिों से मुक्त होता है एवं कुप्रवृत्तियों का परित्याग कर देता है। इस प्रकार वह ऐसी अवस्था को प्राप्त होता है जो मोक्ष की ओर अग्रसर होती है। जहाँ अन्य साधारण नाटकों में अर्थ, धर्म, काम को लक्ष्य की सिद्धि के रूप में स्वीकृति मिली है वहां प्रबोधचन्द्रोदय में मोक्ष को उद्देश्य के रूप में स्वीकार करना एक महत्वपूर्ण कदम है।

प्रबोधचन्द्रोदय का राजनीतिक महत्त्व

प्रबोधचन्द्रोदय में काव्य एवं दर्शन का आधिपत्य होते हुए भी इनमें अपनी प्रभान्विति में तत्कालीन जनमानस की राजनैतिक चेतना स्पष्टता के साथ देखी जा सकती है । राजा एवं प्रजा का सम्बन्ध, राजा एवं मंत्री का सम्बन्ध एवं राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था इन सभी की अभिव्यक्ति इस नाटक में हुई है। अधिकांश नाटककार किसी न किसी राजदरबार में अपना जीवन यापन करते रहे हैं । राज दरबारी कवि होने के कारण उन्हें राज्य की सभी अच्छी एवं बुरी बातों का ज्ञान अवश्य रहा होगा। वे प्रशासनिक कार्यों में अप्रत्यक्ष रूप से दखल देते थे । यही

कारण है कि दर्शन के विषय पर भी लिखने के लिए इन सभी दरबारी राज्याश्रित नाटककारों ने नाटक विधा का आश्रय ग्रहण किया । जिससे कि स्पष्टता के साथ वे राजाओं के जीवन चरित्र का वर्णन कर सके। यही कारण है कि प्रबोधचन्द्रोदय सहित सभी प्रतीक नाटकों में इतिवृत्ति के चौखटे के रूप में राजाओं का वर्णन है। उनके व्यक्तिगत ईर्ष्या द्वेष का उल्लेख है, उनके अत्याचारों का उल्लेख है। उनके धार्मिक सहिष्णुता एवं असहिष्णुता का उल्लेख है, उनकी घरेलू अव्यवस्थाओं का वर्णन है, एवं उनके संघर्षों , विजय, पराजयों का वर्णन है।

प्रबोधचन्द्रोदय ने तत्कालीन राजनीति को स्वस्थ्य एवं संवर्द्धनशील बनाने में अत्यधिक योगदान किया। इस नाटक को पढ़कर या देखकर राजाओं में नैतिक मूल्यों के प्रति निष्ठा उत्पन्न हो सकती है। राज्य की अव्यवस्था को सुधारने का एक यह भी रास्ता है कि प्रत्यक्ष रूप से न रहकर उसे कथा के रूप में व्यक्त कर दिया जाय । कथा के आवरण में कही गई बात अत्यधिक शक्तिशाली एवं स्थाई होती है। इस दृष्टिकोण से इस नाटक का महत्व अधिक है।

यह एक प्राचीन तथ्य है कि प्राचीन काल में राजाओं में बहुधा शक्ति एवं सम्प्रभुता के लिए संघर्ष होते रहते थे। प्रबोधचन्द्रोदय में इसी संघर्ष को अपना आधार बनाया गया है। प्रबोधचन्द्रोदय में अप्रत्यक्ष रूप से राजा कीर्त्तिवर्मा को पुरुष तथ चेदिपति कर्ण को महामोह के रूप में बताकर उनके संघर्ष की पूरी कथा इस नाटक में वर्णित है। श्री कृष्ण मिश्र को प्रकृत नाटक की रचना के लिए गोपाल प्रोत्साहित किया करता था जो राजा कीर्तिवर्मा का मंत्री था। और उसे इस नाटक में विवेक के रूप में चित्रित किया गया है। विवेक रूपी गोपाल द्वारा महामोह रूपी शत्रु कर्ण को हटाकर पुरुष रूपी कीर्तिवर्मा का राज्याभिषेक करना ही इस नाटक

का कथ्य है। ऐसा माना जाता है कि कीर्ति वर्मा के राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में ही इस नाटक का मंचन हुआ था। अतः इस पूरे घटनाक्रम से यह सिद्ध होता है कि श्री कृष्ण मिश्र कीतिवर्मा के राज्याश्रित कवि थे और उनक प्रशंसा में ही इस नाटक का मूल छिपा हुआ है।

प्रबोधचन्द्रोदय का धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व

साहित्य मानव जीवन की सांस्कृतिक विरासत होता है। जातियों के बौद्धिक उत्थान पतन की यथार्थ कथा भी साहित्य ही उल्लिखित करता है। इस तरह प्रबोध चन्द्रोदय नाटक में तत्कालीन सांस्कृतिक चेतना सर्वाधिक रूप में वर्णित है। प्रबोधचन्द्रोदय में दार्शनिक चिन्तन तत्कालीन संस्कृति का अंग है। इसमें दार्शनिक तत्त्व चिंतन की ही प्रधानता है । साथ ही तत्कालीन जनमानस की धार्मिक प्रवृत्तियों को भी इस नाटक में प्रदर्शित किया गया है। धर्म ही वह केन्द्रीय सूत्र है जो हमारे समाज में संतुलन पैदा करता है। धर्म के अभाव से समाज में विसङ्गतियां उभरती हैं और मनुष्य का नैतिक ह्रास होता है। धर्म के प्रति श्रद्धा न होने से आज सामाजिक अत्याचार बढ़ते जा रहे हैं । भाई भाई में, पति पत्नी में एवं बाप-बेटे में द्वन्द्व की स्थिति दिखाई पड़ती है।

साहित्यकार अपनी प्रज्ञा द्वारा इन तथ्यों को ग्रहण कर के नए सिरे से लोगों में धार्मिकता के प्रति रूझान पैदा करता है। वह धर्म की युग के अनुरूप व्याख्या करता है। उनमें संशोधन एवं परिवर्द्धन भी करता है। इस प्रकार साहित्यकार या कवि की एक धार्मिक भूमिका निश्चित होती है।

प्रबोधचन्द्रोदय में दार्शनिक दृष्टि को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। इस नाटक में दार्शनिक विवेचन की प्रधानता है। यहाँ पर दार्शनिक विवेचन का यह तात्पर्य नहीं है कि इन नाटकों में दार्शनिक दृष्टिकोण से भारतीय संस्कृति का विश्लेषण किया गया । इसका तात्पर्य केवल यही है कि प्रबोधचन्द्रोदय में भारतीय संस्कृति के निर्माणात्मक तत्वों का वर्णन किया गया है। संस्कृति के मूलभूत तत्त्व,

जिनसे किसी संस्कृति का निर्माण होता है, प्राकृतिक प्रभावों एवं मानव की सहज प्रवृत्तियों से उत्पन्न होते हैं । मनुष्य की आस्था, उसका विश्वास, उत्थान-पतन एवं आशा-निराशा इत्यादि संघटन से ही किसी जातीय सांस्कृतिक इतिहास का प्रतिफलन होता है।

मानव स्वभावतः जिज्ञासु प्रवृत्ति का होता है। जब वह सर्वप्रथम इस धरती पर आया तो उसका सम्पर्क अपने चारों तरफ के वातावरण से हुआ। इस वातावरण में कई तरह की वस्तुएं एवं उनमें विभिन्नताएं विद्यमान थीं। एक तरफ उसने आकाश में अग्नि के समान सूर्य को देखा तो दूसरी तरफ शीतल मनोहारी चन्द्रमा को देखा। इसके अतिरिक्त अपनी लघुता में खिलखिलाते तारों को देखा तो दूसरी ओर वनों की हरियाली को देखा, निर्द्वन्द्व भाव से विचरण करने वाले जानवरों को देखा, रंग बिरंगे फूल देखे, इत्यादि। इन विविधताओं को देखकर इनके प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करना स्वाभाविक है और यही प्रतिक्रियाओं का ढंग मानव जीवन का इतिहास बन गया। वस्तुतः मनुष्य प्रारम्भ से लेकर आज तक इन प्राकृतिक विविधताओं के प्रति अपनी प्रतिक्रियायें ही व्यक्त करता है। इन्हीं प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करने में विविधता होती है और यही विविधता मनुष्य की बौद्धिक स्तर का परिचय देती है। पहले मनुष्य दूसरी तरह की प्रतिक्रिया व्यक्त करता था और आज दूसरे तरह की प्रतिक्रिया व्यक्त करता है।

प्राचीनकाल में मनुष्य ने प्रकृति का केवल रमणीय स्वरूप ही नहीं देखा बल्कि उसका विकराल स्वरूप भी देखा । उसने सामुद्रिक तूफानों को देखा, भीषण जल-प्रपातों को देखा, जंगलों की धधकती हुई दावाग्नि को देखा, अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि के कष्टों को देखा एवं खतरनाक बीमारियों को भी देखा। एक तरफ जहां

उसने अपनी प्राकृतिक रमणीयता से भावविह्वलता का सम्बन्ध जोड़ा तो दूसरी ओर प्रकृति की प्रचण्डता से भय अनुभव किया। इसीलिए उसने समस्त प्राकृतिक प्रचण्डताओं को देवी देवताओं के रूप में स्थापित करके उनको खुश करने का प्रयास किया। इन स्थापित देवी देवताओं की प्रार्थनाएं होने लगी। सभी वैदिक साहित्य आज जिस रूप में समुपलब्ध है। उसे एक वृहद स्तुति ग्रन्थ कह सकते हैं । कहीं उसमें वर्षा के देव इन्द्र की स्तुति है तो कहीं अग्नि देव की स्तुति, तो कहीं सूर्यदेव की स्तुति।

प्रबोधचन्द्रोदय में तत्कालीन बौद्धिक एवं दार्शनिक चिन्तन का निष्कर्ष प्राप्त होता है। अतः हम कह सकते हैं कि इस नाटक में श्री कृष्ण मिश्र ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार भारतीय संस्कृति को प्रचारित एवं प्रसारित करने का कार्य सम्पादित किया है। प्रबोधचन्द्रोदय ने तत्कालीन जनमानस में सांस्कृतिक चेतना पैदा करने का जो प्रयास किया है वह बहुत महत्वपूर्ण है। दार्शनिक अवबोध की क्षमता सभी में होती है। लेकिन दर्शनशास्त्र की विचारात्मक जटिलता एवं तार्किक नीरसता के कारण दार्शनिक अभिरूचि जनसामान्य को नहीं छू पाती। प्रबोधचन्द्रोदय का यह असाधारण श्रेय है कि उन दार्शनिक तत्त्वों को यह सभी व्यक्तियों के लिए सुलभ बनाती है। तात्त्विक चिंतन रूपी कटु लेकिन गुणकारी औषधि को मधु या दुग्ध रूपी यह नाटक सर्वथागग्रह्य बना देता है। इस प्रकार प्रबोधचन्द्रोदय का दार्शनिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक महत्त्व जनसामान्य के लिए एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

सप्तम् अध्याय

उपसंहार

सप्तम् अध्याय

उपसंहार

प्रबोधचन्द्रोदय नाट्क की समीक्षा के क्रम में प्रतीक नाटकों की सुदीर्घ परम्परा के विवेचन से यह ज्ञात हुआ कि संस्कृत वाङ्मय में यह प्रतीक नाटक अपना विशिष्ट स्थान रखता है। यद्यपि प्रतीक शैली को नाट्यकृति में सर्वप्रथम प्रणीत करने का श्रेय महाकवि अश्वघोष को जाता है, लेकिन उनकी नाट्यरचना अत्यन्त ही छिन्न-भिन्न अवस्था में प्राप्त हुई और कुछ दिनों तक प्रतीक नाटकों के प्रणयन की प्रक्रिया बाधित हो गयी ।

इस प्रक्रिया को पुनः प्रारम्भ करने का श्रेयस्कर कार्य श्री कृष्ण मिश्र जी ने 11वीं शताब्दी में 'प्रबोधचन्द्रोदय' की रचना करके किया। इस प्रतीक नाटक की रचना उन्होंने अमूर्त्त भावों के विशुद्ध मानवीकरण के माध्यम से की और इसका श्रेय उन्हें निश्चित रूप से जाता है। एक सहस्त्र वर्षों के कालान्तर के पश्चात् श्री कृष्ण मिश्र ने इस प्रतीक नाटक की रचना की । इतने लम्बे अन्तराल के बाद हुई इस रचना के बाद स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि प्रतीक

शैली के नाटकों का प्रणयन बीच में अवरुद्ध क्यों हो गया?

इस विषय में कई मत प्रचलित हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि चूँकि अश्वघोष बौद्ध दार्शनिक थे और इन एक सहस्त्र वर्षों में बौद्धों का विरोध चरम सीमा पर था, यद्यपि उनकी कृति और शैली बौद्ध दर्शन से प्रभावित थी, इसलिए यह प्रतीक शैली भी आस्तिक विचारधारा वाले विद्वानों के कोप का भाजन बन गयी। कालान्तर में यह शैली अपने अद्वैत विचारों को भी जन मानस तक सहज एवं सरल ढंग से पहुँचा सकती है, इसका अन्वेषण श्री कृष्ण मिश्र ने किया। उन्होंने दर्शन से जनसामान्य को होने वाले लाभ को दृष्टिगत रखकर, इस प्रतीक शैली से युक्त दार्शनिक नाटक की रचना की।

दर्शन का मानव जीवन में जो महत्त्व है, उसका वर्णन पहले अध्याय में किया गया है । जब दर्शक अमूर्त्त भावों को अपने सामने मानव रूप में वार्तालाप करते हुए देखते हैं, तो सहज ही वे उन भावों को आत्मसात् कर लेते हैं और इस प्रकार नाटक का कथ्य अर्थात् दार्शनिक सिद्धान्त उन्हें स्वतः समझ में आने लगता है। जिससे रचनाकार का ध्येय पूरा होता है।

वस्तुतः संस्कृत वाङ्मय के नाटकों में प्रतीक शैली के विकास का मुख्य स्रोत सर्वप्रथम वैदिक संहिताओं में प्राप्त होता है । बाद के ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषदों में भी इस प्रतीक शैली को कुछ विकसित रूप में ग्रहण किया गया है। इसके बाद रामायण और महाभारत में प्रतीक नाट्य शैली का प्रयोग पर्याप्त विकसित रूप में हुआ है।

कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तल' एवं भास के 'बालचरित' में कुछ प्रतीक पात्रों का संघटन हुआ है, किन्तु इन नाटकों में पूर्ण प्रतीकात्मकता नहीं है। इस प्रकार स्वतः सिद्ध है कि प्रतीक नाटक शैली का पूर्ण विकास ग्यारहवीं सदी के मध्य में श्री कृष्ण मिश्र द्वारा प्रणीत प्रबोधचन्द्रोदय नाटक में ही होता है ।

इसके पश्चात् कई प्रतीक नाटक लिखे गये और प्रतीक नाटकों के प्रणयन की होड़ सी लग गयी। नाटककारों का एक पूरा वर्ग ही इस क्षेत्र में रम गया । जिसके फलस्वरूप संकल्पसूर्योदय, अमृतोदय, चैतन्यचन्द्रोदय आदि महत्त्वपूर्ण कृतियाँ इस काल में रची गयी। ये सभी प्रतीक नाटक अधिकांशतः दार्शनिक हैं। इनमें चरित्रों के माध्यम से किसी न किसी दार्शनिक समस्या को

अर्थात् वह सनातन पुरुष तुमसे भिन्न नहीं है, तुम भी पुरुषोत्तम से भिन्न नहीं हो। यह तुम्हारी अनादि माया से भिन्न प्रतीत होता है। जैसे एक ही सूर्य बिम्ब जल में तरंग भेद से भिन्न प्रतीत होता है।

दार्शनिक तत्त्व स्वभावतः कठिन होते हैं, उन्हें सरल बनाकर सुधीजनों के समक्ष लाना ही कवि की सफलता मानी जाती है। इस दृष्टि से देखने पर भी श्री कृष्ण मिश्र अति सफल हुए हैं। ईश्वर और माया का सम्बन्ध कैसा है? ईश्वर सृष्टि करते हैं या स्वतंत्र माया सृष्टि करती है? इस प्रश्न के उत्तर को निम्नलिखित श्लोक में बड़ी सरलता से समझा जा सकता है

अयः स्वभावादचलं बलाच्चल त्यचेतनं चुम्बक सन्निधाविव ।

तनोति विश्वेक्षितुरीक्षितेरिता जगन्ति मायेश्वरतेयमीशितुः ' ॥

आशय यह है कि जिस तरह चुम्बक के सम्पर्क में आने से लोहा स्वभावतः अचल लौह जैसे चल हो जाता है उसी तरह माया भी ईश्वरेक्षित होकर जगत की सृष्टि करती है, यही मायेक्षण ही ईश्वर की ईश्वरता है । यहाँ इस गूढ तत्त्व को सरल ढंग से हृदयङ्गम कराया गया है।

भौतिक सुखों के लिए मन में जो स्वाभाविक अभिलाषा हुआ करती है उसकी इस ग्रन्थ में भर्त्सना की गई है। दुनिया के झंझट में अधिक आशक्ति होने पर मनुष्य का मन सदैव कष्टपतित तथा चिन्तित रहा करता है, इस बात से संतोष दिलाने के लिए श्री कृष्ण मिश्र स्त्री -पुत्रादि से अनाशक्त भाव रखने का वैराग्य उपदेश देते हुए निम्न श्लोक में कहते हैं -

'पान्थानामिव वर्त्मनि क्षितिरुहां नद्यामिव भ्रश्यतां

मेघानामिव पुष्करे जलनिधौ सांयात्रिकाणामिव ।

संयोगः पितृमातृबन्धुतनय भ्रातृप्रियाणां यदा

सिद्धो दूरवियोग एव विदुषां शोकोदयः कस्तदा'॥

जैसा कि स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ का प्रतिपादनीय विषय अद्वैत वेदना सम्मत मोक्ष प्रकार है, उसके साथ ही श्री कृष्ण मिश्र ने विष्णु भक्ति का संयोग उपस्थित किया है। भक्ति का स्वरूप सदा से मधुर रूप में वर्णित होता रहा है जो उसकी वास्तविक रूपरेखा होती है । श्री कृष्ण मिश्र ने भी भक्त का एक मधुर चित्र

अपने इस प्रतीक नाटक में चित्रित किया है।

'तोयार्द्राः सुरसरितः सिताः परागैरर्चन्तश्च्युत कुसुमैरिवेन्दुमौलिम् ।

प्रोद्गीतां मधुपरूतैः स्तुतिं पठन्तो नृत्यन्ति प्रचललताभुजैः समीराः' ॥

वायु रूप भक्त शिव भक्ति में ओत प्रोत है। उसने गंगा स्नान करके विभूति से अपने अङ्गों को स्वच्छ बना रखा है, उसकी विभूति पराग ही है, वृक्षों से फूल चू रहे हैं। मानों वह भक्त वायु अपने आराध्य के ऊपर फूल चढ़ा रहा है, भ्रमर शब्द कर रहे हैं, मानो वह महिम्नः स्त्रोत्त का मधुर परायण कर रहा है, लताएं झूल रही हैं मानो भक्ति की प्रचुरता में नाच रहा है। इस प्रकार इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि यह नाटक उच्चकोटि की कविता प्रस्तुत करता है।

विष्णु भक्ति के उल्लेख से उत्पन्न हुए अशांशिभाव का निराकरण करते हुए श्री कृष्ण मिश्र प्रबोधचन्द्रोदय के सबसे महत्वपूर्ण चमत्कारातिशयाधायक षष्ठ अङ्क में पुरुष और प्रबोध को एक बताते हुए कहते हैं -

मोहान्धकारमवधूय विकल्पनिद्रा -

मुन्मथ्य कोऽप्यजनि बोधतुषाररश्मिः ।

श्रद्धाविवेकमतिशान्तियमादिकेन्

विश्वात्मकः स्फुरति विष्णुरहं स एषः ।

अर्थात मोह रूप अंधकार को दूर कर और विकल्प निद्रा को मथित कर बोधरूप चन्द्र का उदय हो रहा है । श्रद्धा, विवेक, मति, शान्ति और यम आदि के साथ जो विश्वात्मक विष्णु प्रकट होता है, वह यही है।

कला की दृष्टि से प्रबोधचन्द्रोदय साधारण नाटकों की तरह ही समृद्ध है । इसमें नाट्यशास्त्र के नियमों का पालन किया गया है । अमूर्त्त भावों का पात्रों के रूप में चित्रण सजीवता उत्पन्न करता है। रसाभिव्यक्ति के कारण काव्यात्मक सौन्दर्य उच्च कोटि का है। इसका मुख्य रस शान्त रस है, लेकिन अन्य सहयोगी रसों की उपस्थिति से यह प्रतीक नाटक अन्य साधारण नाटकों से कमतर नहीं है । प्रबोधचन्द्रोदय के पात्र श्री कृष्ण मिश्र के नाट्य रचना कौशल से मनुष्य होने

का पूरी तरह आभास कराते हैं लेकिन कहीं कहीं उनका कार्य आभास की स्थिति से आगे नहीं जा पाता ।

पात्रों के रूप में विवेक विचार का प्रतीक है। विवेक उस विचार को कहते हैं जो वस्तु की यथात्मकता को सोच समझ सकता हो। इसी प्रकार एक अन्य पात्र मति उस बुद्धि को कहा गया है जो विवेकानुगत है, इसी तरह और भी मानसिक भाव इस नाटक में पात्र बनाए गये हैं।

ऐसे पात्रों को समझने के लिए तद्बुद्धि और रूचि वाले पाठक अपेक्षित हैं। अतः इस नाटक के अध्ययन से पूर्व यह समझना आवश्यक है कि यह नाटक केवल सामान्य नाटक नहीं वरन् दार्शनिक नाटक है। तब इस नाटक का आनन्द वास्तविक रूप में प्राप्त हो सकता है। अधिकतर विद्वानों का मानना है कि ऐसे नाटक धार्मिक या नैतिक शिक्षा देने की दृष्टि से या पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए लिखे जाते हैं।

क्र गंभीर भावपूर्ण दार्शनिक विचारधारा को आधार बनाकर एक मनोरंजक नाटक प्रस्तुत करना दुरुह कार्य है। किन्तु यह अत्यन्त सत्य है कि इस प्रकार की कठिनाइयों के रहते हुए भी श्री कृष्ण मिश्र की यह रचना अधिक

सफल हुई है। श्री कृष्ण मिश्र ने मानव आत्मा के शाश्वत संघर्ष का जो कलात्मक नाटकीय चित्र उपस्थित किया है, वह वास्तव में अभूतपूर्व है। अतः श्री कृष्ण मिश्र का 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक सभी दृष्टि से सुखान्त नाटक के रूप में अपनी परिपूर्णता को प्राप्त करता है।

संदर्भ ग्रन्थावली

संदर्भ ग्रन्थावली

संस्कृत हिन्दी कोश - वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसी दास , 1966 पृ0 1056

हलायुधकोश - (अभिधानरत्नमाला)

संपादक - जयशंकर जोशी, सरस्वती भवन, वाराणसी, प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, पृ0 456

ईशादि नौ उपनिषद् - व्याख्याकार - हरिकृष्णदास, गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं0 2020

उत्तररामचरितम् - भवभूति, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण, सं0 2019

उपनिषदाय्र्यभाष्य-द्वितीयभाग - (छान्दोग्य और वृहदारण्यक साथ-साथ)

ऋग्वेद संहिता - सायण भाष्य, (9- 10वां मण्डल), चतुर्थ भाग, सं0 1838

काव्य प्रकाश - मम्मटाचार्य, झलकीकर, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, सप्तम संस्करण, पूना, 1965

काव्यतत्त्वसमीक्षा - नरेन्द्रनाथ शर्मा चौधरी, मोतीलाल बनारसीदास, 1956

कालिदास - एस0ए0 सावनिस, बाम्बे, 1966

गोप ब्राह्मणोत्तरभाग - कलकत्ता, 1872

छान्दोग्योपनिषद् - (सानुवाद शंकरभाष्य), गीता प्रेस, गोरखपुर, च0सं0 सम्बत् 2019

तैत्तिरीयब्राह्मण प्रथम भाग - ग्रन्थाङ्क 37, 1939

दशरूपकम् - धनंजय कृत, व्याख्याकार - डा0 भोलानाथ शङ्करव्यास, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1962

नाट्यशास्त्र - गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, भाग 1-3 1959

नाट्य शास्त्र - काव्य माला - 42 बाम्बे 1943

निरूक्त - यास्काचार्य, बाम्बे संस्कृत सीरीज।

बालचरितम् - भास, व्याख्याकार- रामजी मिश्र, चौखम्भा विद्याभवन, चौक, वाराणसी - 1, प्रथम संस्करण, 1961

महाकवि अश्वघोष - डा0 हरिदत्त शास्त्री, शान्तिनिकेतन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 1963

महाभारत (मूलमात्र) - महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन, आदिपर्व, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना 1933

यजुर्वेदसंहिता - अजमेर, 1974 वि0

रसगङ्गाधर - पण्डितराज जगन्नाथ, मधुसूदन शास्त्री, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, प्रथम भाग, सं0 2020

शतपथब्राह्मण - वर्लिन 1855

शांख्यायन ब्राह्मण - आनन्दाश्रमसंस्कृत सीरीज, पूना, 1911 वि0

शिशुपालबधम् - श्री माघ, टीकाकार- हरिगोविन्द शर्मा चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, सं0 2018

श्रीमद्भागवत्महापुराण (मूलमात्र) - गीताप्रेस, गोरखपुर, द्वितीय संस्करण, सं0 2020

अमृतोदयम् नाटकम् - गोकुलनाथोपाध्याय, निर्णयसागर प्रेस, कौलभटलेन, बाम्बे, द्वितीय संस्करण, 1935 ई0

अमृतोदयम् नाटकम् – गोकुलनाथोपाध्याय, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, व्याख्याकार – आचार्य रामचन्द्र मिश्र, 1965

चैतन्यचद्रोदयम् – कविकर्णपुर, निर्णयसागर प्रेस, 23, कौलभटलेन, बाम्बे, द्वितीय संस्करण, 1917

जीवनमुक्तिकल्याणम् – श्री नल्लाध्वरी, श्री रङ्गभ, श्रीवेणी विलासप्रेस, गोपालमन्दिर लेन, बनारस सिटी, 1930

जीवसंजीविनी नाटकम् – श्री वेकटरमणाचार्य, बंगलौर वि0वि0 सुब्बय्य अण्ड सन्स मुद्राक्षीशाला, मुद्रित 1955

जीवानन्दनम् नाटकम् – श्री आनन्दरायमखी, अड्यार, मद्रास 1947 ई0

जीवानन्दनम् – श्री आनन्दरायमखी – हिन्दी व्याख्या कार श्री रामचन्द्र शुक्ल, टाइम टेबुल प्रेस, बनारस, सितम्बर 1935

धर्मविजयनाटकम् – भूदेव शुक्ल, विद्याविलास प्रेस, गोपाल मन्दिर लेन बनारस सिटी, 1930

प्रबोधचन्द्रोदय नाटकम् – श्री कृष्ण मिश्र, हिन्दी व्याख्याकार – श्री रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा विद्या भवन, बनारस–1, 1955

प्रबोधचन्द्रोदयनाटकम् – श्रीकृष्ण मिश्र, (चन्द्रिका व्याख्या, प्रकाश व्याख्या सहित) निर्णय सागर प्रेस, बाम्बे, षष्ठ संस्करण 1935

पुरंजनचरितम् – श्रीकृष्णदत्त मैथिल, चैटरबुक स्टाल, प्रथम संस्करण, 1955

मोहराजपराजयम् – यशपाल, सेन्ट्रल लाइब्रेरी बड़ौदा 1918 ई0

यतिराजविजयनाटकम् – श्रीवरदाचार्य, तिरूमाला तिरूपति देवस्थानम्- तिरूपति, 1956

विद्यापरिणयम् – श्री आनन्दरायमखी, निर्णयसागर प्रेस, दि0सं0 बाम्बे 1930

संकल्पसूर्योदयम् – श्रीवॅंकटनाथ, वेदान्तदेशिक, अड्यार, मद्रास 1948

अमर कोश – श्री अमरसिंह, श्री वॅंकटेश्वर प्रेस, बाम्बे, 1952 ई0

ग्रीब्स जर्मन डिक्शनरी – (जर्मन एण्ड इंग्लिश), पु0न0 443514 इलाहाबाद यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी।

मेदिनी कोश – –

वाचस्पत्यम् (वृहत् संस्कताभिधानम्) – चौखम्बा संस्कृत सीरीज, ग्रन्थ सं0 94, पंचम तथा षष्ठ भाग, 1962

वेव्सटर्स न्यू इन्टरनेशनल डिक्शनरी – पृ0 68

वेदिकपदानुक्रम कोश – (उपनिषद्), खण्ड 3, लाहोर, 1945 (प – ह)

वैदिकपदानुक्रमकोश या ए वैदिक – (ब्राह्मण एण्ड आरण्यक), (त–ह)

वर्ड कानकार्डेस विश्वबन्धु शास्त्री, लाहोर, वाल्यूम 2, 1956 ई, पृ0 674

शब्दकल्पद्रम – स्यारराजाराधाकान्त देव, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, तृतीय भाग पृ0 268

शब्दरत्नसमन्वयकोध – पृ0 20, 59

संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी – मौनियर विलियम्स, न्यू एडीशन, पृ0 886

संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी – वामन शिवराम आप्टे, जवाहर नगर, डेलही, 6, 1965

संस्कृत आलोचना – पं0 बलदेव उपाध्याय, प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ प्रथम संस्करण 1957

संस्कृत नाटक - ए0 वी0 कीथ, भाषान्तरकार उदयभानु सिंह, मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम रूपान्तर, 1965

संस्कृत साहित्य का इतिहास - वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 1

संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास - कृष्ण चैतन्य, अनुवादक - विनयमुमार राय चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।

थियरी एण्ड प्रैक्टिस आफ हास्य रस - डा0 लालरमाथदुपाल सिंह, पृ0 403

इन संस्कृत ड्रामा

द ऋग्वैदिक डाइलाग्स ए स्टडी - कु0 उषाकरम वेलकर, पृ0 21, 23, 27, 29, 30

नेषध परिशीलन - डा0 चन्द्रिकाप्रसाद शुक्ल पु0 न0 810/10 स

प्रबोधचन्द्रोदय और उसकी हिन्दी - डा0 सरोज अग्रवाल, हिन्दी साहित्य

भारतीय प्रतीक विद्या - डा0 जनार्दन मिश्र, विहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, 3, वि0 2015

भारतीय दर्शन - श्री बलदेव उपाध्याय, शाखा मन्दिर वाराणसी, षष्ठ संस्करण, 1960

भारतीय दर्शन - श्री सतीशचन्द्र चटटोपाध्याय, एवं श्री धीरेन्द्र मोहन दत्त, श्री हिमालय प्रेस, पटना, 4, 1964

रङ्गमंच - शेल्डान चीनी, अनुवादक, श्रीकृष्ण दास, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ।

हमारी नाट्यपरम्परा - श्रीकृष्णदास, साहित्यकार संसद, प्रथम संस्करण, 1956

हिन्दी साहित्य कोश - सं0 धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लि0, वाराणसी प्रथम संस्करण सं0 2015

संस्कृत नाटककार - कान्तिकिशोर भरतिया, प्रथम संस्करण, 1959

श्रीमद्वाल्मीकिरामायण - द्वितीय संस्करण, मद्रास 1918

साहित्य दर्पण - विश्वनाथ कविराज, मोतीलाल बनारसी दास, द्वितीय संस्करण, 1956

सामवेदसंहिता - चतुर्थसंस्करण, सं0 2008

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य - प्रो0 श्रीधर भास्कर, माडर्न बुक स्टोर, अकोला एवं नागपुर, सन 1963

चन्देल और उनका राजत्वकाल - श्री केशवचन्द्र मिश्र

प्रतीकशास्त्र - श्री परिपूर्णानन्द वर्मा, हिन्दी समिति सूचना, उत्तर प्रदेश, लखनऊ ग्रन्थमाला 97, प्रथम संस्करण, 1964

प्राकृत साहित्य का इतिहास - डा0 जगदीशचन्द्र जैन, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सं0 2018 पृ0 614

प्राचीन भारत का इतिहास - डा0 विमलचन्द्र पाण्डेय (250 ई0 से 750 ई0) प्रभात प्रेस, मेरठ, 1965

प्राचीन भारत का राजनीति तथा सांस्कृतिक इतिहास - (पूर्व ऐतिहासिक काल से 320 ई0 तक) विमल चन्द्र पाण्डेय, हिन्दुस्तानी एकेडमी

इण्डियन फिलासफी - डा0 एस0 राधाकृष्णन्

इण्डियन फिलासफी - चन्द्रधर शर्मा, बनारस हिन्दू यूनिव0, 1952

ए हिस्ट्री आफ इंग्लिश लिटरेचर - (एम0 कैजामिया)

ए हिस्ट्री आफ इंग्लिश लिटरेचर - (फ्राम चासर टु माडर्न टाइम), अमरनाथ जौहरी, सरस्वतीसदन, मंसूरी, प्रथम संस्करण, जनवरी 1961,

ऐनशेण्ट इण्डिया - आर0सी0मजूमदार, मोतीलाल बनारसीदास 1952 ईसवी

ड्रामाज - एच0 एच0 विल्सन, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1962

दी हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी - डा0 दास0 गुप्ता

दी हिस्ट्री आफ कल्चर आफ द इण्डियन पिपुल - आर0 सी0 मजूमदार, भारतीय विद्याभवन बाम्बे, पृ0 312, 384, 444, 443

दी नम्बर आफ रसाज - डा0 वी0 राघवन् मद्रास, 1940

पॉलिटिकल हिस्ट्री आफ इण्डिया - हेमचन्द्र राय चौधरी, कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस, दिसम्बर 1953 पृ0 83

हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर - एम0 वीन्टरनीट्ज, मोतीलाल बनारसीदास वाल्यूम 3, भाग 1

हिस्ट्री आफ ऐनशेण्ट इण्डिया - रमाशंकर त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसी दास, पृ0 225, 229,231

हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर - ए0 वी0 कीथ

हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर - मैकडानल, लन्दन, द्वितीय संस्करण, नवम्बर 1905 ई0

अमृतोदयम् नाटकम् — गोकुलनाथोपाध्याय, निर्णयसागर प्रेस, कौलभटलेन, बाम्बे, द्वितीय संस्करण, 1935 ई0

परम्परा सम्मेलन, प्रथम संस्करण 1962

भोजाज श्रृंगारप्रकाश - डा0 वी0 राघवन् अड्यार, मद्रास, 20, 1963

हिन्दी काव्य में अन्योक्ति - डा0 संसारचन्द्र राजकमल प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण, 1960

हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन (संस्कृत और अंग्रेजी नाटकों के परिपार्श्व में) - डा0 शान्तिगोपाल पुरोहित, साहित्य सदन देहरादून, प्रथम संस्करण, 1964, पृ0 143

हिन्दी नाटकों का उद्भव और विकास - डा0 दशरथ ओझा, द्वितीय संस्करण, सं0 2013

हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद का विकास - डा0 वीरेन्द्र सिंह, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, 1964

संस्कृत साहित्य में अन्योक्ति के उद्भव एवं विकास का एक आलोचनात्मक अध्ययन (शोध प्रबन्ध) - डा0 राजेन्द्र प्रसाद मिश्र

संस्कृत काव्यशास्त्र को पाण्डितराज - डा0 कमलेशदत्त त्रिपाठी, पृ0 78-90
जगन्नाथ का योगदान (शोध प्रबन्ध)

पत्र-पत्रिकाएं एवं सूची पत्र

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज - (द वृषाकपि हिम्), वा0 प्रथम, सीनेट हाउस, इलाहाबाद, 1925, पृ0 97- 156

इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटरली - वाल्यूम द्वितीय, पृ0 413-15

इण्डियन एण्टीक्वेरी, वाल्यूम 420 पृ0 382

इण्डोलाजिकल स्टडी, पार्ट 3, 1959

एनुअल रिपोर्ट आफ द आर्केयोलाजिकल सर्वे ।

ए डेस्क्रिप्टिव केटलाग आफ संस्कृत मैन्सूक्रिप्ट्स, वाल्यूम 9, 1906

एनसाइक्लोपीडिया आफ रीलीजन एण्ड एथिक्स , वाल्यूम 1, 2, 4, 7,

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, वाल्यूम 1, पृ0 645

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, वाल्यूम 21, पृ0 700

कल्याण भागवतांक, प्रथम खण्ड, एडीटेड एच0 पी0 पोद्दार एण्ड सी0 एल0 गोस्वामी, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ0 386-394

केटलाग्स आफ संस्कृत मैन्स्क्रिप्ट्स इन मैसूर एण्ड कूर्ग, मैसूर गवर्नमेंन्ट प्रेस, 1884

केटलाग्स आफ एम0 एस0 एस0 इन द सेन्छूल लाइब्रेरी, बड़ौदा, वाल्यूम 1, पृ0 468

केटलाग आफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मैनसक्रिप्ट्स इन द सेण्ट्रल प्रावीन्सेज एण्ड वैरार
राज बहादुर हीरालाल पृ0 287

जनरल आफ ओरियण्टल, मद्रास

जनरल आफ द आसाम रिसर्व सोसाइटी

डेसक्रिप्टिव केटलाग आफ द संस्कृत मैन्स्क्रिप्ट्स वाल्यूम, 3, 1930 वोणीविलास प्रेस,
श्री रङ्गम्।

थियोडार आफ्रेख्त केटलाग्स केटलागारम - वाल्यूम 1, 2, पृ0 29, 407, 352, 207

द एनसाइक्लोपीडिया अमेरिका, वाल्यूम 1, पृ0 411

बौद्ध साहित्य में कवि अश्वघोष का अवदान - लक्ष्मणसेन गुप्ता, नालन्दा त्रैमासिक
पत्रिका, कलकत्ता, 1966

बर्नेल्स केटलाग नं0 10698

संस्कृत एण्ड तमिल मैनस्क्रिप्ट्स फार द हयर 1896-97, न0 1, गवर्नमेन्टप्रेस । 1998